# सबला

वर्ष 5 : अंक 5 सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली दिसंबर-जनवरी, 1993

## सहयोग मंडल

कमला भसीन

ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

'जागोरी' समूह

## संपादिका

शारदा जैन

## उप-संपादिका

सुहास कुमार

वीणा शिवपुरी

## चित्रांकन

बिंदिया थापर (मुख्य पृष्ठ)

सुमिता सब्बरवाल

## वितरण

प्रतिभा गुप्ता


ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार तथा 'नोराड', नई दिल्ली द्वारा अनुदानप्रदत; डाक्टर शारदा जैन (सेवाग्राम विकास संस्थान, 1 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रैस (सी. बी. टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित।

इस अंक में


| | |
|---|---|
| हमारी बात | 1 |
| समता कला जत्था | 3 |
| शराबखोरी के खिलाफ सफल अभियान —सुहास कुमार | 5 |
| समझौता (कविता) —अलका नांगिया | 7 |
| एक नई शुरुआत —वीणा शिवपुरी | 8 |
| पहली सती (कहानी) —विजी श्रीनिवासन् | 10 |
| कितनी सुरक्षित है हमारी बेटियां —क्षमा पति | 11 |
| नारी जब होगी जागृत (कविता) —प्रमिला गंगल | 12 |
| इक देश है, इसे बचाना है | 13 |
| वो धर्म नहीं वो नफ़रत है (कविता) | 14 |
| मन्दिर-मस्जिद या रोज़ी रोटी (कविता) —कमला भसीन | 15 |
| लड़कों को स्वावलंबी बनाएं —रेणुका पामेचा | 16 |
| लिखी-पढ़ी: साक्षरता कार्यक्रम —जुही जैन | 17 |
| हिंदी सिखाने का आसान तरीका —ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन | 18 |
| दो रपटें—धर्म के बारे में हमारा नज़रिया | 21 |
| —चर्चा पर्दे पर —एक्शन इंडिया, सबला संघ | 23 |
| होगा सपना साकार (कविता) —प्रोमिला ठाकुर | 24 |
| हिंदु विधवा का संपत्ति पर अधिकार —कमलेश जैन | 25 |
| शिविर कैसे लगाएं —संस्था 'प्रिया' | 27 |
| जन-शक्ति एक बार फिर —सुहास कुमार | 29 |
| औरतों की आवाज: विवेक की आवाज —वीणा शिवपुरी | 30 |

# हमारी बात

'सबला' के सभी पाठकों को नये वर्ष की शुभकामनाएं। जिस हालात में नया साल आया है उसमें तो कोई खुशी नहीं है। चारों ओर डर और दुख का माहौल है। लेकिन इस माहौल को अपनी क़िस्मत मान लेना, इस डर, दुख, बंटवारे के अंधियारों में जीते रहना भी तो ठीक नहीं है। हमारी कामना है कि हम सब जो कुछ हम से हो सकता है करें, देश की एकता, देश की विविधता बनाए रखने को। यह देश तभी बचेगा जब यहां हर धर्म को मानने वाले, हर जाति के लोग, हर भाषा बोलने वाले स्त्री और पुरुष सभी इज्ज़त से जी सकेंगे। हम यह कामना करते हैं कि 1993 में झगड़े कम होंगे और सदभावना बढ़ेगी।

नये साल में हम महिला शिक्षा को आगे ले जाने का अपना वादा फिर से दोहरा रहे हैं। ज्ञान और शिक्षा हर औरत, हर बेटी तक पहुंचे। कोई भी लड़की ज्ञान और शिक्षा की रोशनी के बिना न रहे यह हमारा सपना है। 'सबला' इस सपने को पूरा करने की कोशिश जारी रखेगी।

शुरू से ही हर समाज ने औरतों को औपचारिक, स्कूली या आश्रमों की शिक्षा से वंचित रखा है। ज्ञान या इल्म पाना, इकट्ठा करना, नया ज्ञान बनाना, ज्ञान को औरों तक पहुंचाना सिर्फ मर्दों का काम और अधिकार रहा है। कुछ इक्की-दुक्की औरतों ने ज़रूर अपनी हिम्मत से या किसी और की मदद से ज्ञान पाया है। इतिहास में उनके नाम हैं पर वो इक्की-दुक्की ही थीं। पंडित, विद्वान, दर्शन शास्त्री, धर्म शास्त्री सब पुरुष ही रहे।

कुछ धर्मों और समाजों में औरतों पर बन्धन थे। वो चाहते हुए भी शिक्षा नहीं पा सकती थीं। कहते हैं हिन्दू समाज में स्त्रियों और शूद्रों को वेद सुनने का भी अधिकार नहीं था। लिखने पढ़ने की बात अलग रही, वे वेद सुन भी नहीं सकते थे। संपन्न जाति के पुरुष नहीं चाहते थे कि औरतें और शूद्र ज्ञान पा कर अपने शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठाएं। इसीलिए स्त्रियों और शूद्रों को पंडित बनने का भी अधिकार नहीं है। यह भी एक बड़ा कारण है औरतों और शूद्रों के पिछड़े होने का। आज भी हिन्दुस्तान में सिर्फ़ 39 प्रतिशत औरतें साक्षर हैं। लड़कों की तुलना में कम लड़कियां स्कूल भेजी जाती हैं। लड़कों से ज़्यादा लड़कियां बीच में ही पढ़ाई छोड़ देती हैं। यही वजह है कि औरतें और पिछड़ी जाति के लोग हर तरह से 'पिछड़े' रहते हैं।

हम लोग औरतों के जायदाद के अधिकारों की बात करते हैं, वोट के अधिकारों की बात करते हैं, लेकिन ज्ञान पाने और ज्ञान उपजाने का जो सबसे ज़रूरी अधिकार उसकी अधिक बात नहीं करते। विनोबा भावे ने बार-बार हमारा ध्यान इस अधिकार की ओर खींचा था। अपनी पुस्तक "स्त्री-शक्ति" में विनोबा लिखते हैं—"स्त्रियों को हिन्दू धर्म ने सन्यास और ब्रह्मचर्य का अधिकार नहीं दिया है। यह जो आध्यात्मिक अपात्रता है, उससे स्त्रियों में स्थायी हीन भावना आ गई है।"

धार्मिक और सामाजिक क़ानून तभी बदलेंगे जब स्त्रियां पंडित बनेंगी, ज्ञानी बनेंगी, पुराने धर्मों और क़ानूनों की व्याख्या करेंगी। उन धर्मों और क़ानूनों में जो ग़ैर-बराबरी है उसे दूर करेंगी और ऐसे क़ानूनों और धर्मों की रचना करेंगी जिनमें स्त्री-पुरुष, हर जाति, हर संप्रदाय के लोगों को बराबर के हक़ होंगे। ऐसी विद्वान औरतें तभी आगे आएंगी जब ज़्यादा से ज़्यादा औरतें साक्षर होंगी। जब हर घर में विदुषियां होंगी, जब पूरे समाज में स्त्री शिक्षा का माहौल बनेगा। लाखों, करोड़ों पढ़ी-लिखी औरतों में से निकलेंगी क़ानून शास्त्री, धर्म शास्त्री, अर्थ शास्त्री, समाज शास्त्री।

आज के हमारे शास्त्र, हमारे इतिहास, हमारा पूरा का पूरा ज्ञान अधूरा है क्योंकि उस में स्त्रियों और मज़दूर वर्ग की भागीदारी नहीं है। उनके विचार नहीं हैं, उनके अनुभव नहीं हैं। एक छोटे से वर्ग द्वारा लिखे शास्त्र भला कैसे 'संपूर्ण' हो सकते हैं, वो कैसे पूरे समाज को आगे ले जा सकते हैं?

विनोबा भावे कहते हैं कि स्त्रियां ज्ञान साधना करेंगी तभी पार पड़ेगी, तभी स्त्री-जाति का उद्धार होगा। उनके अनुसार "स्त्रियों को खूब ज्ञानाभ्यास करना चाहिए। ज्ञान की छोटी-सी पूंजी पर स्त्री तेजस्वी नहीं बन सकती है और पुरुष प्रधान समाज में स्वतंत्र हो कर काम करने की शक्ति उसमें नहीं आ सकती। सरस्वती जैसी ज्ञान में अग्रसर स्त्रियां होनी चाहिए। पुरुषों को कम ज्ञान हो तो चलता है, परन्तु स्त्रियों को बहुत से काम करने हैं, इसीलिए उन्हें पूरा ज्ञान होना चाहिए।"

हम विनोबा जी की बात से पूरी तरह सहमत हैं। हर पिछड़े वर्ग को शिक्षा की ज़्यादा ज़रूरत है। पिछले पचास-साठ सालों में कुछ महिलाएं हर क्षेत्र में आगे आई हैं। आज औरतें अर्थ शास्त्री, धर्म शास्त्री, क़ानून शास्त्री, डाक्टर हैं। इन्हीं में से कई औरतों ने इन शास्त्रों की नारीवादी नज़रिए से व्याख्या की है। इन्हीं की बदौलत हमें मालूम पड़ा है कि कहां और कैसे औरतों के साथ अन्याय हो रहा है। इन्होंने ही हमें बताया है, आंकड़े दे दे कर समझाया है कि औरतें खेतों-खलिहानों में कितना काम करती हैं, घर चलाने में, बच्चे पालने में कितना योगदान करती हैं। बिना पढ़ी-लिखी औरतों के ये सब बातें हम तक नहीं पहुंच पातीं। इस दौर को हम सब ने मिल कर आगे ले जाना है।

हमें इस बात की भी खुशी है कि आज हमारे देश में जो साक्षरता अभियान चल रहा है उसमें भी औरतें मर्दों के साथ कंधे से कंधा मिला कर आगे चल रही हैं। चार करोड़ नव-साक्षरों और चालीस लाख साक्षरता शिक्षकों में दो-तिहाई औरतें हैं। इस अभियान को, इस ज्ञान की ज्योति को हमें अभी और बहुत आगे ले जाना है।

आठ मार्च 1993 से देश के आठ राज्यों में **समता—शिक्षा और समानता के लिये ज्ञान-विज्ञान जाथा**—शुरू हो रही है। हम 'सबला' की तरफ से समता जाथा का अभिनंदन करते हैं। 'सबला' अपने पूरे बल से इस जाथा का साथ देगी। हमें पूरा भरोसा है कि 'सबला' के सभी पाठक भी समता जाथा में मदद करेंगे। इस अंक में हम समता जाथा के बारे में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं। 1993 में स्त्री शक्ति जगे, स्त्री साक्षरता और ज्ञान बढ़े, यही हमारी मनोकामना है, यही हमारी शुभकामना है।

—कमला भसीन

# समता कला जत्था

## *शिक्षा, समता और शांति के लिए*

### *महिलाओं का ज्ञान-विज्ञान जत्था*

"बहना, हमने साइकिल चलाना सीख लिया है। अब हम आज़ादी से जहां चाहें जा सकती हैं। हमें डाक्टर के पास जाने के लिए किसी की मिन्नत करने की ज़रूरत नहीं है। यह साइकिल का चक्का नहीं, जिंदगी का चक्का है जिसने हमारी ज़िंदगी को नया मोड़ दिया है।"

ये शब्द हैं पुद्दूकोट्टाई (तमिलनाडू) की बहनों के। यह ज़िला उन 150 ज़िलों में से है जहां पूर्णसाक्षरता अभियान चल रहे हैं। महिलाएं इन साक्षरता अभियानों की आधार स्तंभ हैं। 4 करोड़ शिक्षार्थियों और 40 लाख स्वैच्छिक अनुदेशकों का दो तिहाई हिस्सा महिलाएं और लड़कियां हैं। महिलाएं साक्षरता अभियान में कई अगुआ भूमिकाएं अदा कर रही हैं। नेतृत्व, संगठन, प्रशिक्षण, कला जत्था और पढ़ाने के लिए सभी क्षेत्रों में वे आगे आईं हैं। अपनी ज़िंदगी के महत्वपूर्ण मुद्दों पर सवाल भी उठा रही हैं। नैल्लौर में अरक-विरोधी आंदोलन की शुरुआत महिलाओं ने ही की। इसलिए समता कला जत्थे के बीज-विचार ने जन्म लिया।

### एक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक आयोजन

अलग-अलग तमाम सांस्कृतिक कार्यक्रमों को जोड़ने की भूमिका निभाएगा समता कला जत्था। समता द्वारा देश के 8 विभिन्न अंचलों से कला जत्था समूहों के लगभग 700 महती सांस्कृतिक कार्यक्रमों का निर्देशन किया जाएगा। लगभग 3,500 स्थानीय प्रदर्शन भी महिलाओं के स्थानीय कला जत्थों द्वारा किए जाएंगे।

आठों आंचलिक कला जत्थे 8 मार्च '93 को देश के अलग-अलग भागों से शुरू होकर 30 दिन में 13 राज्यों में यात्रा करने के बाद 8 अप्रैल को झांसी (उत्तर प्रदेश) में इकट्ठा होंगे। वहां राष्ट्रीय स्तर पर एक बहुत बड़ी रैली होगी जिसमें पूरे देश के लगभगे 2000 प्रतिनिधि भाग लेंगे।

जत्थे द्वारा प्रदर्शित कार्यक्रम एक लंबी प्रक्रिया की एक कड़ी होंगें। जत्थे के पहले और बाद में स्थानीय स्तर पर अनेक शिक्षात्मक और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाएंगे। समता का संदेश लोगों तक नाटक और गीतों के सिवा सभा एवं गोष्ठियों में चर्चा, पोस्टर प्रदर्शनी, विडियो फिल्म एवं गीतों के कैसेट द्वारा पहुंचाया जाएगा। नवसाक्षर और आम जनता के लिए उपयुक्त जागरूकता साहित्य का वितरण भी किया जाएगा।

### परिपेक्ष्य और उद्देश्य

— समता का मुख्य उद्देश्य है एक ऐसी प्रक्रिया शुरू करना जिससे महिलाएं सोचें। सवाल उठाएं। शिक्षा का मतलब सिर्फ़ साक्षरता नहीं है। लेकिन साक्षरता शिक्षा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

— महिलाओं को बराबरी का दर्जा और शांतिपूर्ण ज़िंदगी के लिए शिक्षा ज़रूरी है। शिक्षा का मतलब है ऐसी प्रक्रिया जिससे उन्हें अपने

शोषण और उत्पीड़न के कारण समझ में आएं। उनका अपने पर भरोसा बढ़े। वे अपने में एक नई ताक़त महसूस करें।

— वे समझें कि संगठित होकर वह अपने जीवन में बदलाव ला सकती हैं। उनमें एक नई आशा का संचार करना।

— जत्थे का उद्देश्य ऐसा माहौल बनाना है कि महिलाएं ज्ञान-अर्जन और जानकारी के लिए खुद मांग करें। उन्हें एहसास हो कि शिक्षा से उनकी ताक़त बढ़ेगी। उनके शोषण को रोका जा सकेगा।

— समाज के हर स्तर के लोगों में महिलाओं की अशिक्षित एवं सही स्थिति के प्रति जागरूकता पैदा करना। सारे राष्ट्र का ध्यान इस ओर खींचना।

— साक्षरता अभियानों, उत्तर साक्षरता कार्यक्रमों और महिला आन्दोलनों को जोड़ना जिससे महिलाओं की शिक्षा और ताक़त बढ़ाने की दिशा में एक साथ काम हो सके।

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:

समता, सी-18, डी.डी.ए. फ्लैट्स
नई दिल्ली-110017
फोन : 6864063

# तुम लड़की हो तुम्हें क्यों पढ़ना है?

कमला भसीन

बाप - बेटी से -

पढ़ना है! पढ़ना है! क्यों पढ़ना है?
पढ़ने को बेटे काफ़ी हैं, तुम्हें क्यों पढ़ना है?

बेटी - बाप से -

जब पूछा ही है तो सुनो
मुझे क्यों पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूँ
मुझे पढ़ना है

पढ़ने की मुझे मनाही है सो पढ़ना है
मुझ में भी तरुणाई है सो पढ़ना है
सपनों ने ली अँगड़ाई है सो पढ़ना है
कुछ करने की मन में आई है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूँ मुझे पढ़ना है

मुझे दर दर नहीं भटकना है सो पढ़ना है
मुझे अपने पाँवों चलना है सो पढ़ना है
मुझे अपने डर से लड़ना है सो पढ़ना है
मुझे अपना आप ही घड़ना है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूँ मुझे पढ़ना है

कई ज़ोर ज़ुल्म से बचना है सो पढ़ना है
कई क़ानूनों को परखना है सो पढ़ना है
मुझे नये धर्मों को रचना है सो पढ़ना है
मुझे सब कुछ ही तो बदलना है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूँ मुझे पढ़ना है

हर ज्ञानी से बतियाना है सो पढ़ना है
मीरा का गाना गाना है सो पढ़ना है
मुझे राग बनाना है सो पढ़ना है
अनपढ़ का नहीं ज़माना है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूँ मुझे पढ़ना है

# शराबखोरी के खिलाफ़ महिलाओं के सफल अभियान

सुहास कुमार

**'सबला' के अक्तूबर-नवंबर के अंक में नैल्लोर जिले (आंध्र प्रदेश) की दलित औरतों के संघर्ष की सफल कहानी पाठक पढ़ चुके होंगे। इस लेख में शराब के खिलाफ संघर्ष की दो और रपटें दी जा रही हैं। पाठकों से अनुरोध है कि यदि वे इसी तरह के किसी मामले से परिचित हैं तो उसके बारे में हमें लिखें।**

**—संपादिका**

शराब या नशे की आदत इंसान को उसका गुलाम बना देती है। इसकी लत पड़ जाए तो आदमी को चाहे एक बार खाना न मिले मगर शराब या नशा ज़रूर चाहिए। अब अगर एक गरीब आदमी 15 रु. रोज़ शराब पर खर्च करेगा तो ज़ाहिर है कि घर में दूध, सब्जी, फल आदि पर कटौती करनी पड़ेगी। यही नहीं, इसकी वजह से पति-पत्नी में तक़रार भी बढ़ती है। शराब पीकर अक़सर ही बीबियों के साथ मार-पिटाई होती है।

जहां छोटे-छोटे पास-पास घर हैं वहां पड़ोसी भी अछूते नहीं रह पाते। सभी की शांति भंग होती है। इस लेख में देश के कुछ अलग-अलग भागों की महिलाओं ने किस प्रकार इस समस्या को हल करने की कोशिश की है उसका ब्यौरा है।

## गांव खंजूरी, जिला भीलवाड़ा, राजस्थान

35 वर्ष का मांगीलाल 20 वर्ष की उम्र से शराब पीता था। ब्याह हुआ। तीन बच्चे हो गए। मां-बाप से अलग घर-गृहस्थी बनाई। ज्यों-ज्यों घर की ज़िम्मेदारियां बढ़ीं और ज़्यादा कमाने के लिए ज़्यादा मेहनत करनी पड़ी, शराब की लत ज़ोर पकड़ती गई। पीने के लिए पास में पैसा न था तो धीरे-धीरे पत्नी के चांदी के ज़ेवर बेच दिए। बच्चे बीमार हो गए। इलाज के लिए पैसा न होने से एक एक करके तीनों चल बसे।

साथिन कमला को जब इस स्थिति का पता चला तो वह मांगीलाल की पत्नी गंगा से मिलने गई। उसने उसे अपनी कहानी सुनाई—"बहन गंगा, मैं भी तुम्हारी तरह दुखी थी। 16 साल तक मेरा आदमी भी अफीम खाता रहा। सब कुछ बर्बाद कर दिया। मेरे पास महिला विकास कार्यक्रम की प्रचेता आईं। मुझे और मेरे पति को समझाया। आज वह कोई नशा नहीं करता है और हम सुख से रहते हैं।"

कमला और गंगा की दोस्ती हो गई। वह अकसर गंगा के पास आती। आस-पड़ोस की और औरतें भी साथ बैठने लगीं।

साथिन कमला ने बताया कि सांवला, लादू व भूरा भील तीनों ने नशे की आदत छोड़ दी है।

मांगीलाल को इन तीनों से मिलवाया। बार-बार नशे की बुराइयां बताई। पड़ोस की और औरतें भी मांगीलाल को नशा करने पर टोकने लगीं। मगर मांगीलाल को बात समझ में नहीं आ रही थी।

एक दिन मांगीलाल शाम को शराब पीकर होटल में आया। बिना वजह मुवाना सुनार से लड़ने लगा। बनियों के लड़के व मोहन गूज़र को भी गाली देने लगा। साथिन कमला पानी का मटका भरकर घर जा रही थी। उसने चार-पांच आती जाती औरतों को रोककर जमा कर लिया और मांगीलाल के सामने आकर गरज कर बोली— "मांगीलाल आप भले आदमी हो। 20 साल से तो कभी आपको ऐसे बोलते, मां-बाप की गाली देते नहीं सुना। यहां बहू-बेटियां हैं, कुछ तो शर्म करो। गंगा भी आपकी वजह से परेशान है।" उसकी तेज़ आवाज़ सुन कर सभी सन्न रह गए। मांगीलाल शर्मा गया और साइकिल उठाकर घर चला गया।

दूसरे दिन सभी औरतें मांगीलाल के घर पहुंची। गंगा और मांगीलाल की मां भी मौजूद थीं। मांगीलाल का नशा दूर हो चुका था। उसे बहुत पछतावा था। भगवान चारभुजा की तस्वीर के आगे जाकर, अगरबत्ती जलाकर अपने बच्चों की सौगंध खाकर बोला कि 'आज के बाद कभी शराब नहीं पीऊंगा।' शर्म से वह अपनी आंखें नहीं उठा पा रहा था। कमला की साथिनों ने गंगा से कहा, "अगर यह फिर शराब पीए तो हमें खबर करना।"

इस प्रकार महिलाओं के सहयोग से मांगीलाल ने दारू पीना छोड़ दिया और अपना जीवन सुधारा।

महिला बनी मशाल से

## गढ़चिरौली (महाराष्ट्र)

महाराष्ट्र के गढ़चिरौली ज़िले में सन् '88 से शराबखोरी के खिलाफ़ अभियान चल रहा है। औरतों ने मिलकर कसम खाई कि वह व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से इस समस्या को हल करेंगी। इसमें सहयोग और बढ़ावा देने का श्रेय 'सर्च' संस्था को भी है।

गांवों की औरतों और युवकों ने मिलकर "दारूमुक्ति परिषद" संगठन बनाया। लोगों ने गांव-गांव घूमकर क़ानूनी व गैरक़ानूनी शराब बनाने और बेचने के अड्डों को बंद कराने का बीड़ा उठाया। इस काम में पुलिस और कर-विभाग के कर्मचारियों की तरफ़ से काफ़ी दिक्कतें आईं। कार्यकर्ताओं ने हिम्मत नहीं हारी। गांव-गांव जाकर आंदोलन को सक्रिय रखा।

एक बड़ी रैली की जिसमें 150 गांवों के लगभग 30,000 लोगों ने भाग लिया। उनमें आधी से ज़्यादा औरतें थीं। इस विशाल सभा में ज़िले के कलक्टर, पुलिस अधीक्षक और कई राजनैतिक नेता भी मौजूद थे। सम्मेलन का उद्घाटन करने के लिए मंडा और श्रीहरि लेजोंकर को चुना गया। मंडा उन औरतों की प्रतिनिधि थी जिन्होंने अपने पतियों की शराब की बुरी आदत

छुड़ाने में सफलता हासिल की थी। कुछ महीने पहले तक उसका पति पक्का शराबी था। समझाने-बुझाने, असहयोग, भूख हड़ताल, साथ में न सोना आदि जाने कितने हथियारों का उसने इस्तेमाल किया होगा।

सरकार से उनकी दो मांगें थीं—

1. ज़िले में शराब बेचने के सब लाइसेंस व अनुमति-पत्र रद्द कर दिए जाएं।
2. शराबबंदी की नीति तय व लागू करने की ज़िम्मेदारी गांववालों को दी जाए।

गांव और ताल्लुके के स्तर पर कई सम्मेलन हुए। तीन साल से ऊपर हो गया है इस लड़ाई को चलते। 26 जनवरी '92 को जिले के 331 संगठनों (ज़्यादातर महिलाओं और युवा-संगठनों) ने महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री के सामने प्रस्ताव रखा।

कई गांधीवादी, राजनैतिक नेताओं आदि ने आंदोलन का समर्थन किया। अब महाराष्ट्र सरकार ने निर्णय ले लिया है। 29 जुलाई '92 को यह घोषणा की गई कि गढ़चिरौली ज़िले की सभी शराब की बिक्री की दूकानें बंद कर दी जाएंगी और वहां शराब बिलकुल नहीं आएगी। सब दुकानदारों के लाइसेंस रद्द कर दिए जाएंगें। जनजातियों वाले इलाकों में शराब बिलकुल नहीं जाएगी। गांवों में शराब के नियंत्रण की ज़िम्मेदारी गांववालों की होगी।

इस घोषणा के बावजूद अभी यह पूरी तरह से लागू नहीं हुआ है। फिर भी यह एक बड़ी विजय है। इसे पूरी तरह से लागू करने के लिए सरकार पर दबाव डाला जा रहा है।

(डा. अभय भंग की रपट पर आधारित)

# समझौता

जीवन की गाड़ी के
दो पहिए औरत और मर्द।
पर बिना सहयोग के
यह रिश्ता तो है व्यर्थ।
दो पहियों में एक
अगर हो जाए सुस्त
खुद ही सोचो कैसे रहेगा
दूसरा पहिया चुस्त।।
घर में भी और बाहर भी
हो आपस में समझौता
तभी समझने का इक दूजे को
मिल सकता है मौका।
मिलकर दोनों साथ चलें तो
होंगी जीवन में खुशियां
वरना नष्ट हो जाएगी,
दोनों की ही दुनिया।।
प्रेम-भाव से, समझबूझ कर
रचें दुनिया नवीन
मर्द न समझे वह बड़ा है
औरत न समझे खुद को हीन।।

—अलका नांगिया

# एक नई शुरुआत

वीणा शिवपुरी

महाराष्ट्र में एक छोटा-सा गांव था। भारत के अन्य लाखों गांवों जैसा। लोग छोटे-मोटे धंधे करते थे। थोड़ी-बहुत खेती-बाड़ी थी। हर जगह की तरह वहां की औरते खूब मेहनती थीं। घर और बच्चे संभालती। दूर से पानी, लकड़ी, चारा ढोकर लातीं। जानवरों की देखभाल करतीं। इस सबके बाद खेती-बाड़ी या दूसरे धंधों में भी हाथ बंटाती।

शाम ढले मर्द कच्ची शराब पीकर आते और बीवी-बच्चों के साथ मार-पीट करते। वे बेचारी औरतें उसे भी काम समझ कर सहतीं। अगले दिन फिर वही ढर्रा शुरू हो जाता। सुबह से शाम तक कमरतोड़ मेहनत, फिर मार-पीट, गाली-गलौज।

## गांव में आई नई बहू

गांव के प्रधान के बेटे की शादी हुई। पास के शहर से पढ़ी-लिखी बहू आई। यह गांव के लिए अजूबा बात थी। उस गांव में लड़कियों को पढ़ाने का रिवाज नहीं था। गांव में स्कूल था लेकिन वहां लड़के ही जाते थे। लड़कियों को तो दूसरी-तीसरी कक्षा तक पढ़ाकर घर बिठा लिया जाता था।

प्रधान जी की बहू शोभा तो फर-फर किताब पढ़ती थी। रोज़ शहर से आने वाला समाचार-पत्र बांचती। जब गांव की बाकी औरतों के साथ कुंए पर या नदी पर मिलती तो उन्हें नई-नई बातें सुनाती। ख़बरे बताती। थोड़े ही दिनों में उसने गांव की सभी औरतों का मन मोह लिया।

पहले जो औरतें नाक सिकोड़ कर उसकी पढ़ाई-लिखाई की बुराई करती थीं, वे भी अब उसकी तारीफ करने लगीं।

## शोभा ने की नई शुरुआत

एक दिन शोभा ने सबको सुझाव दिया। क्यों न हम रोज़ कहीं थोड़ी देर के लिए मिल बैठें। अपने दुख-सुख बांटें। कुछ आपबीती, कुछ जगबीती सुनें और सुनाएं।

एक औरत बोली—"हमारे पास समय कहां है? रात-दिन तो काम में खटती रहती हैं।"

दूसरी औरत बोली—"अब भी तो हम बतियाने के लिए समय निकाल ही लेती हैं। कभी कुंए पर, कभी नदी पर तो कभी जंगल में।"

तीसरी औरत ने सुझाव दिया—"दोपहर में जब हम टोकरियां बुनती हैं तब क्यों न मिल कर बैठें। काम भी करेंगी और बातें भी।"

यह बात सबको समझ में आ गई।

## चल निकली औरतों की बैठक

अगले ही दिन से दोपहर में औरतों की बैठक जमने लगी। शोभा पत्र-पत्रिकाओं में से पढ़कर खबरें सुनाती। कभी कहानियां तो कभी कविताएं पढ़ती। कभी-कभी सब मिलकर गीत गातीं। अपने मन की एक दूसरे से कहतीं।

धीरे-धीरे सबको लगने लगा कि हम इतनी मेहनत करती हैं फिर भी बच्चों का पेट नहीं भर

पातीं। मर्द कमाई का बड़ा हिस्सा शराब में उड़ा देते हैं। ऊपर से मार-पीट अलग। सब औरतों में अपने सम्मान का अहसास पैदा होने लगा।

### रोज एक नया दुख

किसी दिन किसी औरत के माथे पर पट्टी बंधी होती तो किसी दिन किसी का मुंह सूजा, होंठ कटे हुए। सब औरतें आपस में मिलकर हल्दी चूना लगातीं। किसी के घर अनाज न हो तो मिलकर एक-एक कटोरी अनाज इकट्ठा करतीं। इस तरह उनमें पैदा हुई एकता और मदद की भावना।

उनके साझे दुखों ने उन्हें एक-दूसरे के करीब ला दिया। शोभा उन्हें दूसरी औरतों के अनुभव भी सुनाती थी। कैसे उन्होंने अपनी लड़ाइयां लड़ीं। किस तरह से तकलीफों का सामना करने का रास्ता ढूंढा। कई बार वे सब आपस में कहतीं—'जब ये औरतें यह सब कर पाई तो हम क्यों नहीं कर सकतीं?'

### मौका मिला

हमेशा की तरह एक दिन रात को एक झोंपड़ी से चीख पुकार उठी। सावित्री चिल्ला रही थी—

"अरे कोई बचाओ। यह मुझे मार देगा।"

हर औरत कसमसा रही थी लेकिन बाहर निकलने की हिम्मत न थी। कुछ ने अपने पतियों से कहा भी कि देखो तो सही क्या हो रहा है? मर्दों ने घुड़क दिया—

"हमें क्या? उसका मर्द है, मर्जी आए जो करे। अपनी औरत को नहीं मारेगा तो क्या पराई औरत को मारेगा।"

सुबह मर्दों के घर से निकलते ही औरतें सावित्री की झोंपड़ी में पहुंची। सावित्री बेसुध पड़ी थी। शरीर पर जगह-जगह नील पड़े हुए थे। उसके कपड़े खून से लथपथ थे। सावित्री का तीन महीने का गर्भ गिर गया था। जल्दी से दाई को बुलाया। उसकी सार-संभाल की। कुछ देर और अगर यूं ही पड़ी रहती तो बेचारी मर ही जाती।

### अब न सहेंगी

हर औरत के मन में एक ही बात थी—बस, अब न सहेंगी। हम क्या इंसान नहीं हैं। ऐसा अनादर, ऐसा अत्याचार अब बर्दाश्त नहीं करेंगी। सबने मिलकर वहीं बैठक की और फ़ैसला ले लिया।

**सब औरतों ने चूल्हे की हड़ताल कर दी। पूरे गांव में खाना नहीं पका। दोपहर में मर्दों को खेतों में खाना नहीं पहुंचा। शाम पड़े घर लौटे तो देखा चूल्हा बुझा पड़ा है। हर औरत ने अपने पति से कह दिया। तुम्हारी जो मर्जी है करो, चूल्हा नहीं जलेगा। चूंकि औरतें एक थीं, आपस में जुड़ी थीं, उनमें ताक़त थी।**

एक दिन बीता। दो दिन बीते। अब तो मर्दों में खलबली मच गई। दो चार ने अपनी औरतों को मारा-पीटा, लेकिन चूल्हा फिर भी नहीं जला। सब पहुंचे प्रधान जी के पास। पंचायत बैठी। औरतों ने अपनी मांग सामने रखी।

हमारे ऊपर हाथ नहीं उठाया जाएगा।

सावित्री के मर्द ने पंचायत के सामने कानों को हाथ लगा कर माफ़ी मांगी।

सब मर्दों ने वचन दिया कि मार-पीट नहीं करेंगे।

अगले दिन अपनी बैठक में सब औरतें खूब खुश थीं। उन्हें मालूम हो गया था कि एक होकर वे अपने हक़ पा सकती हैं। सबने एक दूसरे के गले लग कर बधाई दी। खुशी के आंसू पोंछे।

पता नहीं मर्दों ने कितने दिन अपना वचन निभाया। लेकिन औरतों ने शुरुआत तो की। □

# पहली सती

**विजी श्रीनिवासन की कहानी पर आधारित**

मेरा प्यारा दामाद आज नहीं रहा। उसका जवान सुंदर शरीर आज मृत पड़ा है। मौत में भी वो कितना सुंदर लग रहा है। गोरा रंग, तीखी नाक, काले घुंघराले बाल, माथे पर हल्दी का लेप। मैंने कभी पहले उसे इतना ध्यान से नहीं देखा था। आखिर उसकी सास थी मैं और वो भी विधवा।

मोटी सफेद साड़ी पहनना, जमीन पर सोना और रूखा-सूखा खाना यही मेरा भाग्य है। हर महीने मेरे सिर के बाल काट दिए जाते हैं। कभी मैं सुंदर थी। बहुत सुंदर, लेकिन अब तो लगता है कि वो किसी और जन्म में था। सुंदर रेशमी कपड़े, जेवर, माथे पर सिंदूर, चेहरे पर संतोष भरी हंसी सब खत्म हो चुके हैं। मैं विधवा हूं। लोग मुझे अभागन कहते हैं। मुझे देख कर मुंह फेर लेते हैं। आज मेरी बेटी रूपा भी विधवा हो गई है।

पास के कमरे से फुसफुसाहट का स्वर सुनाई देता है। घर के मर्द बात कर रहे हैं। रूपा के देवर, जेठ और घर का पुरोहित। सब ताक़तवर मर्द। जो वे लोग चाहते हैं वही होता है।

"क्यों न रूपा को उसके पति की चिता पर जला दिया जाए?"

मेरे कान खड़े हो गए।

"कितना नाम और इज्ज़त मिलेगी हमारी जाति को।"

"फिर रूपा अभी जवान है, सुंदर है। वह पुरुष का साथ चाहेगी। अगर पर-पुरुष से संबंध हो गया तो हमारी नाक कट जाएगी।" उसके जेठ ने कहा।

मेरे दामाद की देह अभी तक पूरी तरह ठंडी नहीं पड़ी है। रूपा रो रही है। हिचकियां ले लेकर रो रही है। अब तक अपनी लाल ज़री की साड़ी पहने हुए। उसकी कलाइयों में कांच और सोने की चूड़ियां झलमल कर रही हैं। कल लगाई हुई मेंहदी आज भी हथेलियों पर चमक रही है। दिए की रोशनी में उसका आंसुओं से धुला चेहरा दमक रहा है।

फुसफुसाहट फिर से सुनाई पड़ती है। मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

"रूपा मर गई तो तुम्हें उसकी जायदाद भी मिल जाएगी। ज़िंदा रही तो ज़िंदगी भर उसे खिलाना पड़ेगा। पता नहीं कब तक जिए, नब्बे-सौ साल।"

"ठीक कहते हो। लेकिन इतनी सुंदर औरत को जला दें? हम भी तो उसका आनंद ले सकते हैं। मैंने कई बार उसके पति के भाग्य से ईर्ष्या की थी।"

"मूर्ख न बनो। तुम्हारी पत्नी बहुत तेज है। फिर क्षणिक आनंद के लिए बड़े फायदों को मत छोड़ो।" यह आवाज पुरोहित की थी।

"हम यहां एक बड़ा मंदिर बनवाएंगे। हर वर्ष लाखों रुपयों का चढ़ावा आएगा। मेरी और तुम्हारी कई पीढ़िया बैठ कर खाएंगी।"

"परंतु तुम यह सब करोगे कैसे?" किसी ने पूछा।

"मैं कहूंगा कि मुझे सपने में भगवान ने यह

आदेश दिया है या फिर मैं कहूंगा कि संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों में ऐसा लिखा है।''

''हां, यह ठीक है। संस्कृत कोई नहीं जानता।''

''हम उसे कहेंगे कि तुम स्वर्ग जाओगी अपने पति के साथ। तुम सदा सुहागन रहोगी। वैसे भी अपनी मां का विधवा जीवन देख कर वो जीना भी नहीं चाहेगी। अभी वह दुख में डूबी हुई है। हमें मौके का फायदा उठाना चाहिए।''

''लेकिन बाकी औरतें मना करेंगी?''

''अरे नहीं, वे नादान और अंधविश्वासी हैं। हां, उसकी मां ज़रूर गड़बड़ करेगी। लेकिन उसका इलाज भी मेरे पास है। मैं उसके चरित्र पर दोष लगाने की धमकी दे दूंगा। बस, और कोई रुकावट नहीं है।''

सब कुछ ठीक वैसा ही हुआ जैसा इन पुरुषों ने तय किया था। पुरोहित ने संस्कृत के मंत्र पढ़े। रूपा को नशे की दवा दे दी गई और कहा गया कि उस पर 'सत' आ गया है। उसे दुल्हन की तरह सज़ा कर अर्थी के साथ ले गए। खूब लोग इकट्ठा हो गए। उसकी जयजयकार की। किसी ने यह सब रोका नहीं। मैंने भी नहीं।

वो अपने पति के साथ चिता पर बैठ गई। उसकी नज़र मुझसे मिली। उसने मेरी तरफ़ हाथ फैलाए। लेकिन लपटों ने उसे घेर लिया। सबने कहा जाने से पहले उसने आशीर्वाद दिया था। लेकिन मैं जानती हूं वह आशीर्वाद नहीं था।

वो एक सवाल था मुझसे। मैंने अपनी बच्ची को धोखा दिया। मैंने आने वाली पीढ़ियों की औरतों के साथ धोखा किया।

□

# कितनी सुरक्षित हैं हमारी बेटियां

क्षमा पति

आम धारणा है कि अश्लील फिल्मों और अश्लील साहित्य की वजह से बलात्कार की घटनाओं में बढ़ोतरी हुई है। लेकिन हम जानते हैं कि इससे पहले भी बलात्कार होता था। समाज के भय और लड़की को बदनामी के दाग से बचाने के लिए ऐसी घटनाएं दबा दी जाती थीं।

समाज और क़ानून में बलात्कार के संबंध में ज़ोर-जबर्दस्ती को महत्व दिया जाता है। लेकिन अक्सर ही हम देखते हैं कि शोषण की शिकार महिला या लड़की अचानक ऐसी स्थिति में फंस जाती है कि वह समझ ही नहीं पाती कि क्या करे। नाबालिग और मासूम लड़कियों के बारे में तो दावे से यह कहा जा सकता है कि वे यह जान ही नहीं पातीं कि उनके साथ क्या घटने जा रहा है। हां, बलात्कार के बाद ज़रूर उन्हें यह महसूस होता है कि उनके साथ कुछ बुरा हुआ है। मानसिक रूप से वह बहुत परेशान हो जाती हैं।

## रक्षक ही भक्षक

बहुत सी घटनाओं में सुनने में आता है कि जिन पुरुषों पर लड़कियों की जिम्मेदारी सौंपी जाती है वे खुद ही अपनी कुंठाओं की वजह से भक्षक की भूमिका में खड़े हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में बालिका को बहुत मानसिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। अनजान व्यक्ति के लिए गुस्सा दिखाना आसान है।

अधिकतर यौन संबंध दूसरे ही ढंग से स्थापित होता है लेकिन वह भी बलात्कार ही कहा जाएगा। वह बहुत सहज तरीके से लड़की से नज़दीकी बढ़ाता है। सहज क्रीड़ा के लहजे में उसे बहलाता पुचकारता है। अंत में विश्वास दिलाते हुए कि इससे कुछ भी नुकसान पहुंचने वाला नहीं है उसकी देह पर काबू पा लेता है। यह चचेरा या मौसेरा भाई, चाचा, जीजा, जेठ, ससुर, पड़ोसी, घर का नौकर, मास्टर, शराबी पिता एवं अपना सगा भाई भी हो सकता है।

मां-बाप ऐसी घटना छिपा जाते हैं कि लड़की की शादी कैसे होगी। आहत लड़की की संवेदना को समझने के बजाए उन्हें उसकी नादानी और मूर्खता पर गुस्सा आता है। लेकिन हर औरत का अन्तर्मन अपने मां-बाप के रुख से विद्रोह करता है। उसे लड़कीपन से नफ़रत होती है। पुरुष की यौन-कुंठाओं की शिकार औरत पुरुष जाति से ही नफ़रत करने लगती है।

एक नाबालिग लड़की और एक बालिग महिला के बलात्कारी की सज़ा क़ानून में एक ही है। जब कि कई बार मासूम लड़की जीवन भर के लिए ज़ख्मी हो जाती है। वह आत्महत्या तक को प्रेरित हो सकती है। क़ानून में अपना दावा साबित करने की प्रक्रिया महिला के लिए बहुत उत्पीड़क है। अक्सर अदालत में बरसों लग जाते हैं।

हमें लड़कियों और महिलाओं को सचेत बनाना होगा। ऐसी घटनाओं का खुला विरोध ज़रूरी है। लड़कियों को बहुत छोटेपन से यौन शिक्षा देनी होगी। उन्हें खुद अपनी सुरक्षा के प्रति सचेत बनाना होगा। □

# नारी जब होगी जागृत

जब तक न बनेगी नारी शिक्षित यों ही जोती जाएगी
मानव की जननी होकर भी अपने अधिकार न पाएगी
दाना चुग चुग कर भंडार भरे
मेहनत मजूरी से किए प्रासाद खड़े
घर से बाज़ारों खेतों में बंटी
पत्थर तोड़ा, लोहा पीटा, कोयला बीना
फिर भी पुरुष प्रधान समाज में अबला कहलाई
कब तक अक्षर से मुंह फेर शिक्षा से वंचित रहेगी?
चूनर, चूड़ी,मेंहदी से कब तक मन बहलाएगी?
कब कुरीति का कर बहिष्कार
एक सभ्य समाज बनाएगी?
नारी जब होगी जागृत, युग बदलेगा
वह सबला कहलाएगी।

—प्रमिला गंगल,
बीकानेर

# इक देश है इसे बचाना है

कमला भसीन

हमने तो अब ये माना है
बस सच्चा एक तराना है
मन्दिर मस्जिद तो क़ाफी हैं
इक देश है इसे बचाना है

छः दिसम्बर, 1992 को एक मस्जिद पर वार हुआ। यह वार हमारे उच्चतम न्यायालय पर भी हुआ। हमारी पुरानी 'सर्व धर्म समभाव' की परम्परा पर भी चोट हुई।

इस घटना के बाद वही हुआ जो होना था। हमारे देश के सैंकड़ों गांवों और शहरों में दंगे भड़के। पड़ौसी देशों में भी आग फैली। दुनिया भर में भारत की निंदा हुई, हमारा मज़ाक बना। हज़ारों निर्दोष बच्चों, औरतों और मर्दों का खून बहा और उनकी जानें गईं। हज़ारों परिवार बरबाद हुए। लाखों लोगों के घर उजड़े, लाखों के कारोबार खत्म हुए। लाखों ग़रीबों की मज़दूरी मारी गई। नफ़रत, डर, तनाव जगह-जगह छा गया। ग़रीब देश में करोड़ों का नुकसान हुआ।

## ज़ुल्म औरतों पर

हमेशा की तरह इस बार भी इन दंगों का असर औरतों पर ज़्यादा हुआ। उनका अपमान हुआ, बलात्कार हुआ। हज़ारों विधवा हो गईं। फिर से तिनके चुन-चुन कर घर बनाने का काम उन पर आ पड़ा। डर और भूख से बिलखते बच्चों, घायल हुए मर्दों को संभालने की ज़िम्मेदारी उन पर आ पड़ी।

ये सब दंगे, हिंसा, लूट-मार, गुंडा-गर्दी हुई धर्म के नाम पर, राम और अल्लाह के नाम पर। पिछले कई सालों से मन्दिर-मस्जिद के नाम पर राजनीति खेली जा रही है। जितने दंगे इन चंद सालों में हुए हैं शायद पहले नहीं हुए होंगे। जब भारत ग़ुलाम था तब भी नहीं, जब निरंकुश राजाओं का राज था तब भी नहीं।

और ये सब तब किया जा रहा है जब देश में विदेशी ताक़तों का आर्थिक कब्ज़ा बढ़ रहा है, जब मंहगाई आसमान छू रही है, जब ग़रीबों की हालत बिगड़ रही है। आज जब ज़रूरत है एकजुट होने की, देश बचाने की, हमारे अपने नेता फूट डालने में लगे हुए हैं। बाहर वालों को क्या दोष दें। शर्म से सिर झुकना चाहिए हर भारतवासी का।

कितना आसान है नफ़रत फैलाना, घर जलाना। एक घर बनाने में लोग टूट जाते हैं। लेकिन लोग मिनटों में घर क्या, पूरी-पूरी बस्तियां जला रहे हैं।

अगर ये मान भी लें कि बाबर ने मन्दिर तोड़ कर मस्जिद बनाई थी। तो क्या अब उसी तरह की बर्बरता दिखाना सही है? क्या ग़लत चीज़ को ख़त्म करने के लिए एक और ग़लत काम किया जाए? क्या मार-काट और तोड़-फोड़ की राजनीति धर्म है? क्या यही सिखाता है हमें धर्म? क्या मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन से हमें यही सीखने को मिलता है। खून से कभी मन्दिर-मस्जिद बनते हैं क्या?

इतिहास में बहुत से हिन्दू और मुसलमान

राजाओं ने जुल्म किए थे। क्या आज हमारे राजनैतिक और धार्मिक नेता उनसे होड़ करने चले हैं? कितने हज़ार सालों के गड़े मुर्दे हम उखाड़ेंगे? इस देश में हज़ारों मन्दिर आदिवासियों के पूजा स्थानों पर बने होंगे, तो क्या अब आदिवासी मन्दिर तोड़ना शुरू कर दें? सैंकड़ों सालों से दलितों पर जुल्म हुए हैं तो क्या दलित हथियार उठा कर पुराने बदले चुकाएं? हज़ारों सालों से औरतों पर अत्याचार हुए हैं। तो क्या अब हर घर में औरतें हिंसा करने लगें, पुराने बदले चुकाने लगें? कहां और कैसे रुकेगा ये सिलसिला? एक बार क़ानून की अवहेलना शुरू हो गई तो "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का न्याय चलेगा। फिर न्याय बात-चीत से नहीं, पंचायतों और अदालतों में नहीं, सड़कों पर होगा, छुरियों और तलवारों से, लाठियों और त्रिशूलों से। क्या हम ऐसा समाज चाहते हैं? क्या ऐसी आज़ादी चाहते हैं?

### नफ़रत की राजनीति

अगर एक बार नफ़रत की राजनीति चल निकली तो हर फ़िरक़े में झगड़े होंगे, हिन्दु, मुसलमान, सिख, इसाई, जैन, बौद्ध, शिव भक्त, राम भक्त, सीता भक्त, कृष्ण भक्त, साईं बाबा भक्त, संतोषी मां भक्त, सब एक दूसरे से लड़ेंगे। फिर बचेगा कौन? कम से कम भारत तो नहीं बचेगा।

हमने तो आज तक यही सीखा था कि "ईश्वर अल्लाह तेरे नाम"। अगर ऐसा है तो इनके धाम पर क्यों हंगामा है? सत्ता के भूखे लोग आज ईश्वर और अल्लाह को लड़ा रहे हैं, अपनी गंदी राजनीति में भगवान को खींच रहे हैं। हमने यह भी सीखा था "मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर करना"। आज धर्म के नाम पर नफ़रत फैलाई जा रही है।

इस संकट की घड़ी में चुप नहीं रहना है। अगर देश बचाना है तो हिंसा, दंगों, नफ़रत, टूट-फूट के खिलाफ़ आवाज़ उठानी होगी।

### धर्म इंसानियत का

हमारी नज़र में इंसानियत सबसे बड़ा धर्म है। अगर इंसान और इंसानियत ही खत्म हो जाएंगे तो न समाज बचेगा, न धर्म। भारत में हमेशा से अलग-अलग धर्मों को मानने वाले लोग रहे हैं।

यहां सब धर्मों की इज्ज़त हुई है। कबीर और रहीम, गौतम और गांधी ने हमें यही सिखाया है। आज हर हिन्दुस्तानी का यह धर्म है कि हम अपनी गंगा-जमुनी सांस्कृतिक विरासत ख़त्म न होने दें। सत्ता के भूखे लोगों को धर्म का इस्तेमाल न करने दें। हमें अहिंसा और प्रेम के ही गीत गाने हैं।

आज सिर्फ़ मर्द ही नहीं, चन्द औरतें भी हिंसा फैलाने, दंगे भड़काने में लगी हैं। हमें हर हिंसा फैलाने वाले की आलोचना करनी है, चाहे वो स्त्री हो या पुरुष, हिन्दू हो या मुसलमान। आज ये ज़रूरी है कि हम परखें कौन से साधू, इमाम, पादरी, ग्रन्थी वाकई धार्मिक हैं और कौन से सत्ता की लड़ाई में लगे हुए हैं। आज जो लोग धर्म के नाम पर नफ़रत, अराजकता फैला रहे हैं, हथियारों के ज़ोर पर अपनी बातें मनवाना चाह रहे हैं, जो क़ानून और भारत के संविधान को नहीं मान रहे वो आतंकवादी हैं और देशद्रोही हैं।

'सबला' के इस अंक में हम इसी विषय पर कई कविताएं छाप रहे हैं। इन सभी के द्वारा हम ये कहना चाह रहे हैं कि हम गहराई से विचार करें, संयम रखें और जो सच्चे धार्मिक मूल्य और गुण हैं उन्हीं का पालन करें। □

# वो धर्म नहीं वो नफ़रत है

जो राम रहीम को लड़वाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
सदियों के नाते तुड़वाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
जो गीत बैर का ही गाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
जो अपनेपन को हर जाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है

घावों में नमक भर जाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
घर आंगन सूना कर जाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
हर आंख को आंसू दे जाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
हर दिल की राहत ले जाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है

जो चैनो अमन को लुटवाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
जंगों का आलम बनवाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
जो दहशत ही केवल पनपाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
जो त्रिशूल, लाठियां खनकाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है

जो गांधी से है कतराए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
और हिटलर सा बन इतराए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
जो सत्ता से है बौराए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
जो क़समें हिंसा की खाए वो धर्म नहीं वो नफ़रत है
सुख चैन रथों से मथ जाए
वो धर्म नहीं वो नफ़रत है, वो नफ़रत है

# मन्दिर मस्जिद या रोज़ी रोटी?

ना रोज़ी है ना रोटी है
ना तन पे एक लंगोटी है
पर वो — मन्दिर मस्जिद को रोते हैं
नफ़रत के बीज बोते हैं

छुए आसमान मंहगाई है
पीठ पेट से लग आई है
घनघोर उदासी छाई है
पर वो — मन्दिर मस्जिद को रोते हैं
और अपना देश डुबोते हैं

बच्चे मज़दूरी पर जीते हैं
वो इल्म से रहते रीते हैं
हम खून के आंसू पीते हैं
पर वो — मन्दिर मस्जिद को रोते हैं
ऐसे भी नेता होते हैं

ना नारी का यहां मान है
ना दलितों की पहचान है
ना विकलांगों को स्थान है
पर वो — मन्दिर मस्जिद को रोते हैं
जो है उस को भी खोते हैं

है ज़हर हवा में पानी में
और नेताओं की बानी में
नहीं जोश बचा जवानी में
सब लगे हुए मनमानी में
पर वो — मन्दिर मस्जिद को रोते हैं
बरबादी पे खुश होते हैं

असली बातों से सरोकार नहीं
है देश से इनको प्यार नहीं
ये मज़हब के भी यार नहीं
इसीलिए — मन्दिर मस्जिद को रोते हैं
सब नारे इनके थोथे हैं

अब हमने तो यह माना है
बस सच्चा एक तराना है
मन्दिर मस्जिद तो काफ़ी हैं
इक देश है उसे बचाना है।

# लड़कों को स्वावलंबी बनाएं

रेणुका पामेचा

यह तो अक्सर कहा सुना जाता है कि लड़कियों को स्वावलंबी बनाना चाहिए। स्वावलंबी होने के दो अर्थ हैं। एक है घर-बाहर के तरह तरह के कार्यों के करने की क्षमता, दूसरे आर्थिक स्वावलंबन। जो लड़कियां व महिलाएं आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ी हो जाती हैं वे लगभग पूर्णतया स्वावलंबी हो जाती हैं। लेकिन यह बात लड़कों व पुरुषों पर लागू नहीं होती है। पुरुष धन तो कमा लेते हैं पर घर के कामों के लिए मां, बहन, चाची, भाभी, बुआ, पत्नी, पुत्री या नौकर पर आश्रित होते हैं।

अक्सर उनकी स्थिति दयनीय होती है। उन्हें खाना, चाय बनाना नहीं आता। बटन टांकना, कपड़े सिलना नहीं आता। अचार, चटनी, मुरब्बा बनाना नहीं आता। कपड़ों पर प्रेस करना नहीं आता। घर की सफ़ाई करना नहीं आता। बच्चों को होमवर्क कराना नहीं आता।

ऐसा नहीं है कि पुरुष यह काम कर नहीं सकते। बाहरी दुनिया में दर्ज़ी, होटलों के रसोइए, बावर्ची, अस्पताल के जेनीटर, दफ्तरों के सफाई कर्मचारी सब पुरुष ही होते हैं।

पुरुष औरत पर कितना निर्भर है यह बात तब देखने में आती है जब एक वृद्ध की स्त्री की मौत हो जाती है। उसका जीवन बेहद अस्त-व्यस्त हो जाता है। जब कि एक औरत अगर आर्थिक रूप से स्वतंत्र है तो अपना जीवन व्यवस्थित कर लेती है।

इसकी शुरुआत औरत को ही करनी होगी। लड़कों का शुरू से ही इस प्रकार का लालन पालन करना होगा कि उन्हें घर का कामकाज करना आए। लड़कियों को बाहर के काम, व्यवसाय आदि की ट्रेनिंग देनी होगी। सामाजीकरण की इस प्रक्रिया से ही स्वस्थ समाज की रचना होगी। तब कोई काम ऊंचा (श्रेष्ठ) या नीचा (हेय) नहीं होगा। जब सब काम घर के सब लोग मिलकर करेंगें तो औरत के दोहरे तिहरे काम का बोझ हल्का होगा। □

# मज़हब क्या है?

आओ मिल कर यह सोचें
क्या मज़हब है क्या शैतानी
क्या जायज़ है क्या बेमानी
किस किस को हमें परखना है
क्या तजना है क्या रखना है

जो गीत प्रेम के गाता है, वो मज़हब है
जो जोड़े सब से नाता हैं, वो मज़हब है
जो मेल-जोल सिखलाता है, वो मज़हब है
जो राम-रहीम मिलवाता है, वो मज़हब है

जो परायों को अपनाता है, वो मज़हब है
सब धर्मों के गुन गाता है, वो मज़हब है
जो अहंकार मिटाता है, वो मज़हब है
हम को इंसान बनाता है, वो मज़हब है

जो घावों को भर जाता है, वो मज़हब है
हर पीड़ा को हर पाता है, वो मज़हब है
गुरबत में साथ निभाता है, वो मज़हब है
दुआ बन के लब पे आता है
वो मज़हब है, वो मज़हब है, वो मज़हब है

# लिखी-पढ़ी: साक्षरता कार्यक्रम

जुही जैन

**"कुंए का ठंडा जल**
**पीपल की छांव में**
**रुक जा सहेली बहन**
**आज मेरे गांव में"**

यह उस गीत की पंक्तियां हैं जो पाठा क्षेत्र की सखियां आपको साक्षरता कैम्प में गुनगुनाती मिलेंगी। यह गीत इन सखियों की पढ़ने की इच्छा शक्ति का एक ठोस उदाहरण है और फिर जब हमसे-आपसे कोई कहे "हम अपना सीधा-आटा लेकर आएंगे और दस दिन इकट्ठे रहकर पढ़ेंगे" तो फिर बात कैसे ना बने।

### माहौल तो पहले ही था

कर्वी में चल रहे महिला समाख्या कार्यक्रम के अंतर्गत काम कर रही सखियों को पढ़ाने के लिए माहौल तैयार करने में विशेष मेहनत नहीं करनी पड़ी। जब उनसे पूछा गया कि वे पढ़कर क्या करेंगी तो जवाब थे:

— "पढ़ें तो फड़मुंशी बन जाइबे"
— "कुछु ज्ञान आवे तो समझ-बूझ सकें"
— "मजदूरी पूरी पाइबे"
— "कोऊ हमार मजाक न बना सके"
— "लरका-बच्चा पढ़ाएं"

### लिखी-पढ़ी

इसी माहौल को देखते हुए हमने साक्षरता कार्यक्रम 'लिखी-पढ़ी' शुरू किया। हम लोग यानि कि बीस-पच्चीस सखियां, पढ़ाने वाली सहेलियां इसमें जुड़ीं। हर महीने दस दिन का रहनुमा कैम्प लगाते हैं। गांव से दूर जिससे घर, पति, बच्चों की चिन्ता न रहे। मस्ती, नाच, गाने के लिए भी खुला माहौल हो। तीन महीने तक लगातार तीन कैम्प के बाद प्रशिक्षण खत्म होता है। हर कैम्प के बाद एक महीने का समय घर में पढ़ने के लिए था।

### नमक से अनाज तक का सफ़र

शुरुआत 'क' 'ख' 'ग' से नहीं की गई। हमने चुने—हम औरतों की जिंदगी से जुड़े शब्द, 'नमक', 'अनाज' 'पानी'। जब तक एक शब्द पक्का नहीं हो जाता आगे नहीं बढ़ते। कार्ड, पोस्टर, मिट्टी, स्लेट की मदद से सीखते। ऊब जाते तो नाचते-गाते।

### मोसे न बनत

इस तरह पढ़ाने में मुश्किलें भी काफी आईं। बच्चे कहते "दीदी, तोको गलत बताउती"। कुछ लड़कियां जल्दी सीख पातीं, कुछ बूढ़ी औरतें जिन्होंने कलम ही नहीं पकड़ी थी कहतीं, "मोसे न बनत"। कभी रोते, कभी हंसते, कभी ऊब जाते, कभी घर जाने को कहते। फिर भी एक लगन, एक उत्साह जो कम नहीं दिखता।

### विदाई का समय

दिन बीतते जाते और घर लौटने का समय आता। हम गोले में बैठकर मूल्यांकन करते अपना, एक दूसरी का। गाने गाते, मज़ाक उड़ाते। कभी गजरा पिरोकर, कभी दीपक जलाकर विदा लेते। वापस चल पड़ीं हम अपने-अपने घरों को। □

# हिंदी सिखाने का आसान तरीका

ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

हिंदी वर्णमाला सिखाने का आम तरीका है 'क' से कबूतर, 'ख' से खरगोश, 'प' से पतंग आदि। यानि न जाने हुए अक्षर को किसी जानी हुई चीज से जोड़ना। हमने सिखाने की इस प्रक्रिया को बदला है। जानी हुई चीज की तस्वीर से अनजान अक्षर की ओर जाना। चीज़ भी ऐसी जिसकी शक्ल-सूरत उस अनजान अक्षर से मिलती हो जैसे पंखे से 'प' और ताले से 'त'। इस लेख में हम दस मात्राओं की जानकारी और उन्हें कैसे सिखाया जाए, दे रहे हैं।

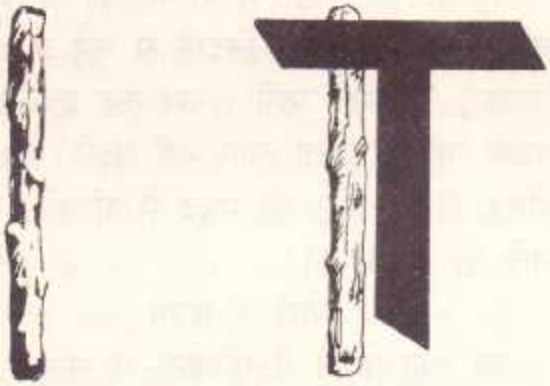

'आ' की मात्रा का मिलान 'डंडे' से किया है जो आवाज और शक्ल में डंडे जैसा है। किसी भी अक्षर के आगे डंडा देखते ही पाठक 'आ' की मात्रा पहचान कर 'प' को 'पा' और 'त' को 'ता' पढ़ेगा। इसी तरह अन्य अक्षरों को।

'इ' और 'ई' का मिलान 'छड़ी' से किया गया है जो शक्ल और आवाज में इस मात्रा जैसी है। अक्षर के बाईं ओर लगी छड़ी 'छोटी इ' और दाईं ओर लगी 'बड़ी ई' कहलाती है। इसे यूं याद रखें—बायां हाथ कमज़ोर होता है इसलिए बाईं छड़ी 'छोटी इ' और दांयां हाथ मजबूत होता है

साक्षरता कार्यक्रम में जुटे कार्यकर्ताओं से अनुरोध है कि वे इस तरीके को अमल में लाकर अपनी प्रतिक्रियाएं हमें भेजें। क्या इस तरीके से मात्राएं सिखाने में कुछ आसानी हुई?

इसी तरह वर्णमाला के अक्षरों को सिखाने के लिए भी तस्वीरें हैं। यदि आपको यह तरीका अच्छा लगे तो हमें लिखें।

संपादिका

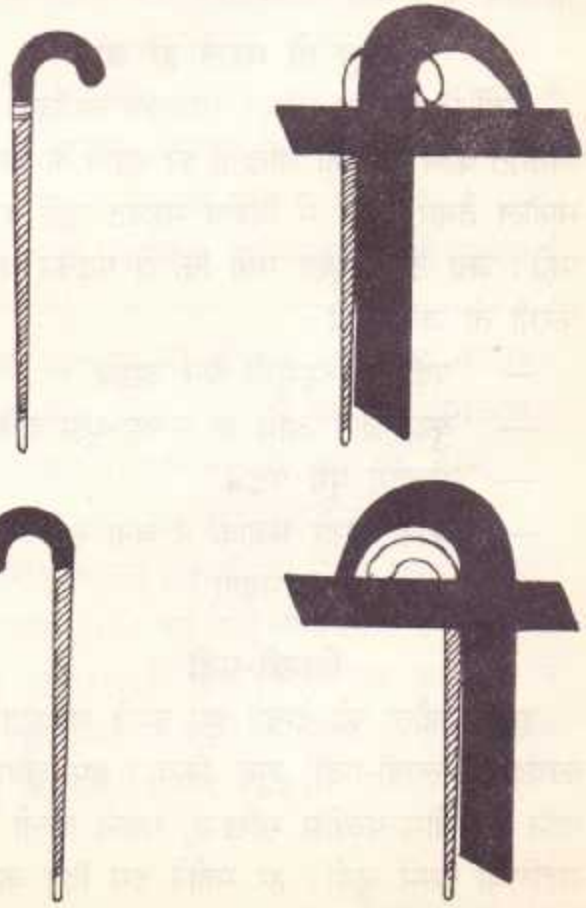

इसलिए दाईं छड़ी 'बड़ी ई' होती है। मिसाल के लिए 'प' के बाईं ओर छड़ी लगाने से 'पि' और दाईं ओर लगाने से 'पी' पढ़ा जाएगा। इसी तरह अन्य अक्षरों पर छड़ी लगा कर अभ्यास कराएं।

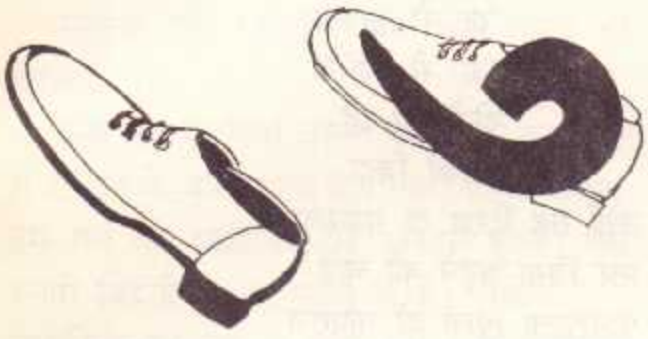

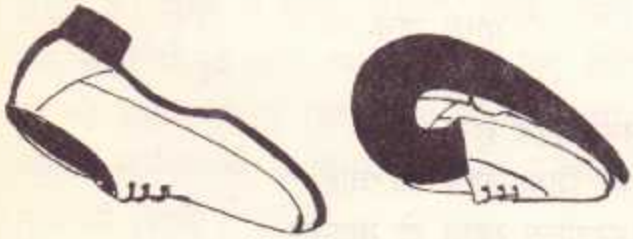

'उ' औद 'ऊ' की मात्राओं का मिलान जूते की शक्ल से किया गया है। जिस तरह जूता शरीर पर सबसे नीचे पहना जाता है, उसी तरह उ या ऊ की मात्रा अक्षर के दाएं या बाएं नहीं, बल्कि नीचे लगाई जाती है। बाईं ओर जूते की नोक 'छोटा उ' और दाईं ओर की नोक 'बड़ा ऊ' कहलाती है। इस तरह अक्षर 'प' पर मात्रा लगा कर 'पु' या 'पू' बना सकते हैं। इसी तरह अन्य अक्षरों को भी।

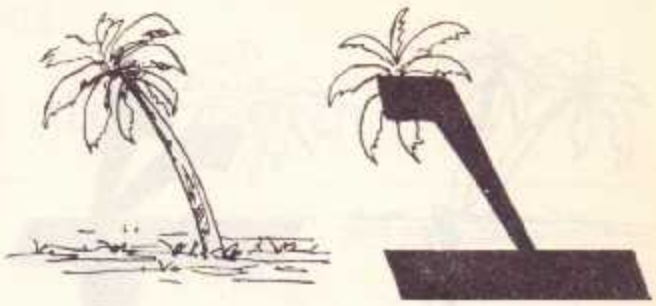

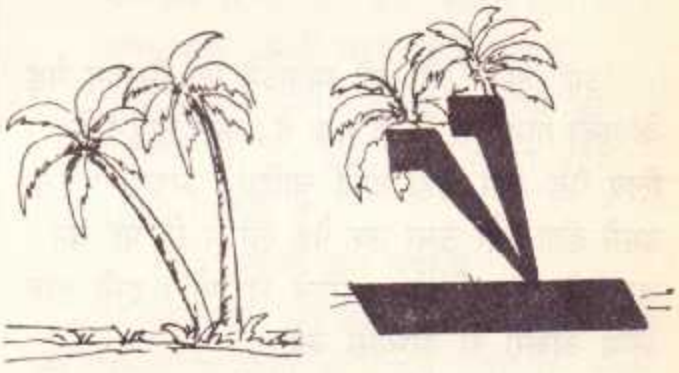

'ए' और 'ऐ' की मात्राओं का मिलान पेड़ से किया गया है। यह मात्रा अक्षर पर पेड़ की तरह लगाई जाती है। अक्षर 'प' पर एक पेड़ लगा दें तो 'पे' बन जाता है और दो पेड़ लगाएं तो 'पै'। इसी तरह अन्य अक्षरों के साथ अभ्यास करें।

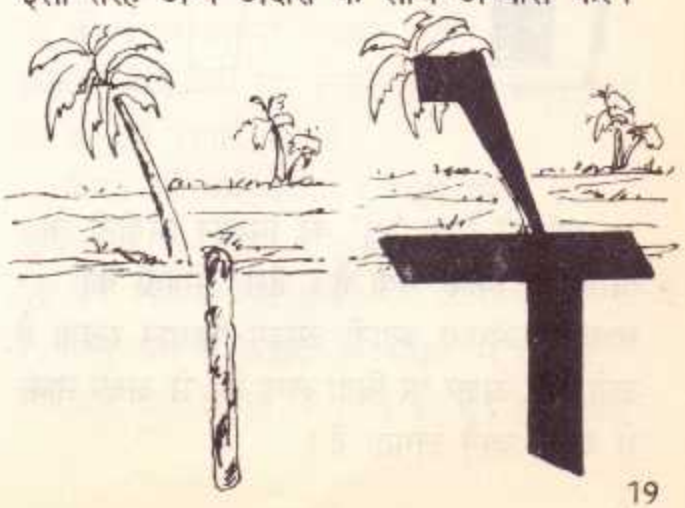

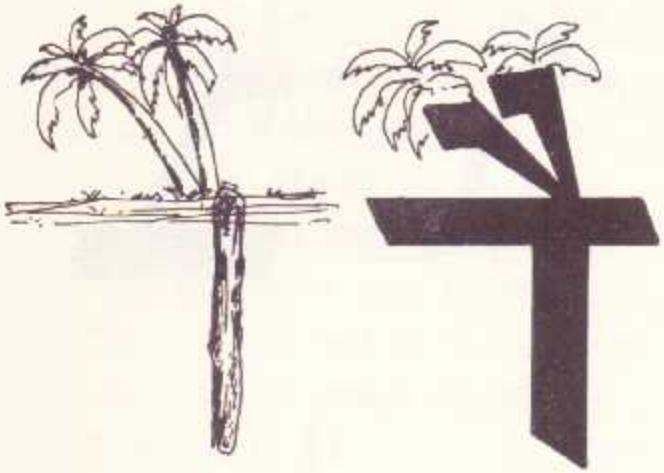

'ओ' और 'औ' की मात्राओं का मिलान पेड़ के फल तोड़ने से किया गया है। फल तोड़ने के लिए पेड़ और डंडा दोनों चाहिए। अक्षर 'प' के आगे डंडा और ऊपर एक पेड़ लगाने से 'पो' बन जाता है और दो पेड़ लगाने से 'पौ'। इसी तरह अन्य अक्षरों से अभ्यास करें।

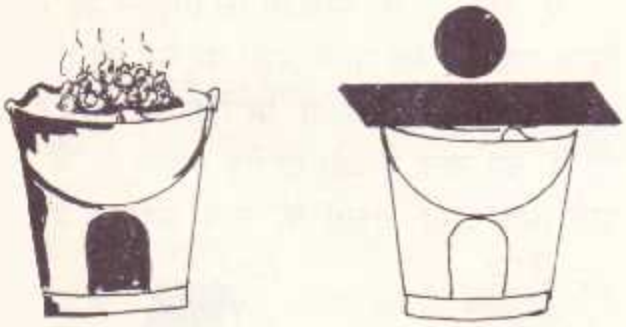



आखिरी मात्रा 'अं' का मिलान अंगीठी के अंगारे से किया गया है। जैसे अंगीठी का धधकता अंगारा अपनी अलग पहचान रखता है, उसी तरह अक्षर पर बिंदी लगा देने से अक्षर नाक से बोला जाने लगता है।

शिक्षक प्रौढ़ पाठकों को मात्राओं का इस तरह बोध करा कर अभ्यास कराएं तो मात्राएं सदा के लिए याद हो जाएंगी।

अक्षरों पर मात्राएं लगाने से ही शब्द और वाक्य बनते हैं। मात्राओं की पहचान हो जाने पर फिर कोई लिखत ऐसी नहीं होगी जो पढ़ी न जा सकेगी।

यह कालिख हटा दो महाराज
मोर जिया लिखने को चाहे
पाठशाला खुला दो महाराज
मोर जिया पढ़ने को चाहे
'ज' से ज़मींदार
'क' से कारिंदा
दोनों खा रहे
हमको जिंदा
कोई राह दिखा दो महाराज
मोर जिया बढ़ने को चाहे
पाठशाला खुला दो महाराज
मोर जिया पढ़ने को चाहे
अगुनी भी यहां
ज्ञान बघारें
पोथी बांचे
मंतर उचारे
उनसे पिंड छुड़ा दो
मोर जिया उड़ने को चाहे
पाठशाला खुला दो महाराज
मोर जिया पढ़ने को चाहे

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
(साभार—होशंगाबाद विज्ञान)

दो रपटें

# धर्म के बारे में हमारा नज़रिया

धर्म क्या है? भगवान कहां हैं?

रीति-रिवाज़ किसने बनाए?

संस्कृति और मान्यताएं कब, कैसे बनती और बदलती हैं?

इन्हीं सब पर चर्चा चलती रही हमारी कार्यशाला में दो दिन के बजाए पांच दिन तक। इसके दौरान हमें धर्म की अहमियत का एहसास हुआ। धर्म हमारी ज़िंदगी के हर पहलू में है। लेकिन सामाजिक बदलाव के साथ धर्म में भी बदलाव की ज़रूरत है।

चर्चा इससे शुरू हुई—कौन किस तरह प्रार्थना करती हैं। समूह में हिंदू, मुस्लिम, सिख, इसाई सब बहनें मौजूद थीं। ज़्यादातर बहनें हिंदू होती हुई भी अलग-अलग धाराओं की थीं जैसे राधा-स्वामी, आर्यसमाजी, कबीरपंथी या किसी न किसी गुरू की शिष्या।

अधिकतर औरतों ने ससुराल आकर पति के धर्म को मानना शुरू कर दिया था। अधिकतर औरतों को अपने धर्मों के बारे में बहुत कम ज्ञान था। धर्म को हमने मान्यताओं, परंपराओं और रूढ़िवादी विचारों से जोड़ रखा है।

धर्म से हमें क्या मिलता है?

औरतों का कहना था—

— धर्म से हमें शक्ति और सकून मिलता है।

— मैं भूखे को कभी अपने दरवाजे से खाली नहीं जाने देती, इससे मुझे मन की शांति मिलती है।

— मैं रोज एक-दो घंटा जाप करने से गुस्से पर काबू पा लेती हूं।

— धर्म से हमें मार्गदर्शन मिलता है।

— धर्म से हमारी मनोकामना पूरी होती है।

— दुख-दर्द में शक्ति मिलती है।

— धर्म हमें पहचान देता है। "हमारा रहन-सहन, जन्म-मरण, शादी-ब्याह, रीति-रिवाज़, परंपराएं हमें अलग-अलग समुदाय की पहचान देते हैं। हमें उससे सहारा और सुरक्षा मिलती है।

### पुरुषों का प्रभुत्व

रामायण, कुरान और कुछ धार्मिक आचार-विचार की पुस्तकों पर चर्चा हुई। पति परमेश्वर, शौहर कोई भी गलत काम नहीं कर सकता। उसकी हर बात मानना, उसे हर हाल में खुश रखना ही नारी धर्म है। पुरुष अपनी मर्ज़ी से कितनी भी औरतों के साथ शारीरिक संबंध रख सकता है पर स्त्री अपने स्वामी की संपत्ति है। उसका पवित्र रहना ज़रूरी है। पुरुष अपना वंश चलाने के लिए औरत की कोख पर अपना नियंत्रण रखना चाहता है। इसलिए धर्म का नाम लेकर उस पर बहुत तरह की बन्दिशें लगाई गई हैं।

किसी भी धर्म को लें। उसमें पुरुषों की सुविधाओं को ध्यान में रखकर ही नियम बनाए गए हैं। लेकिन ऐसा क्यों?

हिन्दू धर्म में हज़ारों की संख्या में व्रत हैं। ज़्यादातर व्रत औरतों के लिए ही हैं। कुछ व्रत

# हमारी आवाज़ें

# परदे के अन्दर से

अच्छा पति पाने के लिए, कुछ सुहाग कायम रखने के लिए, कुछ पुत्र की प्राप्ति के लिए तो कुछ विधवाओं के लिए। ज़ैसे बिना पुरुष के सहारे उनका कोई अस्तित्व हो ही नहीं सकता।

विधवाओं की स्थिति धर्म ने अमानवीय तरीके से आंकी है। उन्हें सादा जीवन बिताना चाहिए। सादा खाना, सादा पहनना चाहिए। यानि पति की मौत के बाद औरत को जीने का कोई हक़ नहीं है। जिस धर्म में देवियों को पूजा जाता है उसी में औरतों पर इतना अत्याचार क्यों?

चर्चा से हम इस नतीजे पर पहुंचे कि हम स्त्रियों के लिए धर्म इसलिए इतना कठोर है क्योंकि इसे बनाने में मर्दों की भूमिका ज़्यादा रही है।

सभी औरतों ने कहा कि धर्म हमारे जीवन का एक अहम हिस्सा है। हम अपने धर्म को नहीं छोड़ सकते।

### कुछ सवाल

सभी धर्मों के नियम पुरुषों ने बनाए हैं। भगवान ने नहीं, खुदा ने नहीं, यीशु ने नहीं। अगर सारे नियम इंसान ने ही बनाए हैं तो इनको बदला क्यों नहीं जा सकता? हम औरतों के हित में औरतों के नज़रिए से नए नियम, नई परंपराएं, नई नारी का धर्म कौन बनाएगा?

## चर्चा पर्दे पर: फायदे कम, मुश्किलें हज़ार

पर्दे कई तरह के होते हैं—

— बुर्का, घूंघट, चिलमन, दुपट्टा
— आंखों का पर्दा
— ज़ुबान का पर्दा
— छूने का पर्दा
— लक्ष्मण रेखा का पर्दा
— इंसान-इंसान के बीच तरह-तरह की दीवारें

रसूल ने जंग के समय पर्दा लागू किया। यहूदी-मुसलमानों की लड़ाई थी। औरतों की हिफ़ाजत के लिए पर्दा बना।

दक्षिण भारत में पर्दे की प्रथा उत्तर भारत के मुकाबले में बहुत कम है।

पर्दे के अंदर हों या बाहर, औरतों पर ज़ुल्म सब जगह हो रहे हैं।

जामा मस्जिद के पास रहने वाली औरतों और लड़कियों में दो दिन तक पर्दे पर चर्चा चली। लड़कियों का कहना था—

मुझे तो बुर्के में बहुत घुटन महसूस होती है।

पर्दे से हिफ़ाजत भी है। रास्ते में लड़के हमें देख नहीं सकते।

गैर मर्द की नज़र से बच जाते हैं पर घुटन बहुत होती है।

बड़ी होने पर ज़बर्दस्ती पहनना पड़ता है।

जब मैं नया बुर्का बनाती हूं तो गुस्सा आता है क्योंकि कपड़ा इतना मंहगा होता जा रहा है।

बड़े बूढ़े कहते हैं बुर्का पहनने से चेहरे पर नूर आ जाता है।

हमारे बुर्का ओढ़ने से हमारे मां-बाप की इज्ज़त है, हमारी भी।

पर्दे से न इज्ज़त बढ़ती है, न घटती है। बुर्के-वालियों को भी कम नहीं छेड़ा जाता।

पहले लड़कियां चुपचाप पहन लेती थीं। आज वे बोलने लगी हैं। अगर मर्जी नहीं है तो साफ़ मना कर देती हैं।

### जहांगीरपुरी, बारहपुला और मंगलापुर (पालम) के मिले-जुले अनुभव:

ससुराल आते ही पर्दे में गिर पड़ी। बड़ा गुस्सा आया था। आज तक उलझन बनी हुई है।

मैं दिल्ली आई तो बुर्का पहनती थी। पति पूरा पैसा नहीं देते थे। काम ढूंढने बाहर निकलना पड़ा। तब पर्दा छोड़ दिया। पति ने डांटा पर कोई और चारा भी नहीं था।

तीन-तीन घंटे नल की लाइन में खड़ा होना पड़ता था। तब बुर्के से बड़ी उलझन होती थी। भाड़ में जाए ऐसा पर्दा जिससे जान जाए।

घूंघट करती थी तो रोटी बनाते समय कई बार हाथ जला। घूंघट पर बड़ा गुस्सा आता था। गांव में पानी भरने गई। कीचड़ में पांव फिसल गया। चोट की किसी को फिक्र नहीं। घड़ा फूटने पर डांट पड़ी। कसूर घूंघट का था।

ससुराल में शौचालय नहीं था। रात अंधेरे में ही जा सकती थी। आधा पेट खाना खाती थी कि कहीं दिन में दर्द न उठ जाए।

मैं गांव से शहर आई तो चैन की सांस ली। अपनी बेटी की शादी शहर में करूंगी। ऐसे घर में जहां घूंघट न करना पड़े। वरना उसे पढ़ाने-लिखाने का क्या फ़ायदा?

**दक्षिणपुरी, नंदनगरी, बसंत गांव में:**

पर्दा तो समाज ने लागू किया है।

मैं बड़ी हुई तो जबर्दस्ती बुर्का ओढ़ा। सहेली को बताया कि घुटन महसूस होती है। एक दिन भैया, भाभी और मैं कहीं जा रहे थे। मेरी सहेली ने अपने भाई को भेज दिया। उसने भैया को सलाम किया। मेरा नक़ाब उठाते हुए बोला भाभी हमें भी अपने साथ ले चलिए। मुझे देखकर वह झेंप गया। भैया ने उस दिन से मेरा बुर्का उतरवा दिया।

पहले मुझे घूंघट अच्छा लगता था लेकिन काम में दिक्कत होती है। इसलिए अब पसंद नहीं।

## चर्चा से निष्कर्ष

अधिकतर लड़कियों और महिलाओं को पर्दा करना अच्छा नहीं लगता है। यह हमारे पुरुष सत्तात्मक समाज की देन है। एक भागीदार के शब्दों में—मुझे तो लगता है कि स्त्री में हीन भावना पैदा करने के लिए ही पुरुषों ने यह प्रथा बनाई है। भगवान ने सबको दो आंखें दी हैं देखने के लिए। पुरुष पर्दा नहीं करते तो स्त्री क्यों करे? क्यों हम इन रस्सियों में बंध कर रहें?

यह भी स्त्रियों के साथ भेदभाव है। जब तक भेदभाव चलेगा हम स्त्री-पुरुष की समानता की बात कैसे कर सकते हैं?

एक्शन इंडिया व सबला संघ से प्राप्त रपटें

# होगा स्वप्न साकार

याद है मुझे बचपन में था मेरा यह विचार
हर खुशियों से भरा है यह प्यारा संसार
दुख के दिनों में भी छाई लगती थी बहार
महसूस होता था खुश है हर परिवार
किशोरावस्था में आते ही, खुले मन के द्वार
वास्तविकता जानकर हुआ सुंदर स्वप्न पर घात
छोटी आयु में बालिकाओं को देखकर डोली पर सवार
इस शरारत पर मन हुआ तार तार
क्या दहेज के कारण नारी को सहना पड़ता अत्याचार
कारण मुझको लगता निरक्षरता का अंधकार
इसलिए साथिनों से निवेदन है बार-बार
उठो, जागो, आगे बढ़ो, चलो अज्ञानता के पार
महिला मंडल की सदस्य बनो करो प्रकट विचार
अपने लिए लड़ना है तुम्हारा अधिकार
सारे समाज में जागृति लाओ चाहती हो जिस प्रकार
अगर तुम संगठित होकर करती हो जन-प्रचार
संभव हो जाएगा तुम्हारा सुंदर स्वप्न साकार।

**प्रोमिला ठाकुर**
गांव खूब्बी (हि.प्र.)

# हिंदू विधवा का संपत्ति पर अधिकार

कमलेश जैन, एडवोकेट

सन् 1956 से पहले हिंदू विधवा को सिर्फ खाने-पीने और रहने की सुविधा मिली हुई थी। ज़रूरत पड़ने पर वह संपत्ति बेच नहीं सकती थी। मगर 1956 के बाद क़ानून में सुधार हुआ है। अब विधवा को पति की संपत्ति पर उतना ही अधिकार है जितना उसके पति का था।

संपत्ति से मतलब है—

सारी स्थाई या अस्थाई संपत्ति जो विरासत, बंटवारे या भरण-पोषण के लिए मिली हो। यह उसे शादी के पहले या बाद में मिली हो। अपनी मेहनत की कमाई हो। यह संपत्ति अगर 1956 के पहले भी मिली हो तो भी ये क़ानून लागू होगा।

### महत्वपूर्ण फैसले

◯ राम की मौत 1955 में हो गई। अपने पीछे वह 3 विधवाओं को छोड़ गया। राम की बहन गीता ने 1956 में यह आरोप लगाया कि तीनों विधवाओं में से एक ने एक बच्चा गोद लिया था जो ग़ैरक़ानूनी था। अतः उस विधवा को संपत्ति से वंचित किया जाए।

अदालत ने फैसला किया कि 1956 के क़ानूनी सुधार के बाद मृतक की विधवा संपत्ति की पूर्ण अधिकारी है।

**(1957-उड़ीसा उच्च न्यायालय)**

◯ यह भी हो सकता है कि विधवा की संपत्ति उसके कब्जे में न हो। नारायणी को मारपीट कर उसके ससुरालवालों ने उसके मायके भेज दिया। वह जब भी ससुराल आती उनके बरताव से तंग आकर 15-20 दिन से ज़्यादा नहीं रह

पाती। लाचार होकर उसने अपने हिस्से की संपत्ति बेच डाली। जब ससुराल वालों ने अड़चन डाली तो जिसने ज़मीन खरीदी थी उसने मुकदमा किया। नारायणी के ज़ेठ और देवर का कहना था कि "नारायणी तो वहां रहती नहीं है। हम तो उसे रखना चाहते हैं। उसका कब्ज़ा भी उस ज़मीन पर नहीं है।"

कोर्ट का फैसला था—जमीन पर नारायणी के दखल-कब्जा न होने से कोई फ़र्क नहीं पड़ता है। नारायणी का उस संपत्ति पर पूरा अधिकार है और उसने अपनी मर्ज़ी से उस ज़मीन को बेचा है। उसके भरण-पोषण के लिए यह बिक्री जायज़ है।

एक विधवा का संपत्ति पर अधिकार तभी कहा जा सकता है जब दो बातें हों—

1. उसकी संपत्ति क़ानूनन उसकी हो।
2. संपत्ति या तो उसके दखल-कब्ज़े में हो या उसके ससुराल वालों के।

◯ विश्वनाथ की मौत 1942 में हुई थी। अपने पीछे वह एक पुत्र और पत्नी को छोड़ गया। 1956 के बाद विधवा का आधी संपत्ति पर पूरा

अधिकार हो गया। जब 1962 में बेटे ने मां की संपत्ति बिना उसकी जानकारी के बेच दी तो वह बिक्री गैरक़ानूनी ठहराई गई।

### बिना लिखा-पढ़ी के संपत्ति का उपहार

सरदार जगजीतसिंह अपनी पहली पत्नी राजिंदर कौर से अलग हो गया था। उसने दूसरी शादी भी कर ली थी। अपराध-बोध हो या कुछ और कारण, उसने एक दिन अपनी पहली पत्नी को खत लिखा—फलानी जगह वाली कोठी तुम्हारी है। मैंने वह तुम्हें भेंट में दी।

सरदार जी की मौत के बाद उस कोठी पर दावा करने के लिए कई रिश्तेदार आ गए। अदालत में बात गई। अदालत का फैसला था—मौखिक (मुंहजुबानी) उपहार पर भी विधवा का पूरा अधिकार है।

सुप्रीम कोर्ट के अनुसार अगर विधवा को आरज़ी डिक्री के द्वारा बंटवारे के मुकदमे में संपत्ति मिली हो और वह उसके दखल-क़ब्जे में है तो वह उसकी अधिकारिणी है। इसके लिए कोर्ट से पक्की डिक्री की ज़रूरत नहीं है।

(सुप्रीम कोर्ट—1962)

यदि किसी पुरुष की दो विधवाएं हैं तो एक के मरने के बाद दूसरी विधवा संपत्ति की अधिकारी होगी। उसके पति का भतीजा अथवा भांजा नहीं।

नए क़ानून के हिसाब से अगर विधवा अपनी संपत्ति बेचना चाहती है या रेहन रखना चाहती है या किसी को उपहार में देना चाहती है तो उसे ऐसा करने के लिए किसी की इज़ाजत लेने की ज़रूरत नहीं है।

विधवा अपनी संपत्ति की पूर्ण अधिकारिणी है। वह उसे चाहे बेचे या दान में दे।

साभार—'आधी ज़मीन' पत्रिका

# बलात्कार के बारे में स्पष्टीकरण

*बहन आशा कुमारी सेन ने हमें बीडगांव, डाकखाना कालाकोट, ज़िला मंदसौर से लिखा है कि जब बलात्कार संबंधी क़ानून की जानकारी पर चर्चा की गई तो महिलाओं ने सवाल उठाया कि विधवा स्त्री के बलात्कारी की क्या सज़ा है?*

हम सब जानती हैं कि समाज में विधवा स्त्री की क्या स्थिति है? वह अपने को कितना लाचार, मजबूर और असहाय पाती है लेकिन क़ानून उन्हें अलग से नहीं देखता। उसके साथ हुए जुर्म की वही सज़ा है जो अन्य मामलों में है।

यदि लड़की की उम्र 16 साल से कम है तो बलात्कार का जुर्म साबित करना ज़्यादा आसान हो जाता है। क्योंकि तब बलात्कारी की यह बात हरगिज़ नहीं मानी जाएगी कि उसमें लड़की की सहमति थी। यही बात मानसिक रूप से असंतुलित महिला के साथ भी लागू होगी।

अगर बलात्कार हुआ है और मुकदमा दायर किया जाता है तो अभियोग लगाने वाले को नीचे लिखी बातें साबित करनी होंगी।

1. दोषी ने महिला के साथ संभोग किया है।
2. बलात्कार करने वाला पुरुष ही दोषी है।
3. संभोग महिला की सहमति के बिना या डराकर, छल-कपट से या नशे आदि में सहमति लेकर किया गया था।

□

# शिविर कैसे लगाएं?

आज सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका बहुत बदल चुकी है। अगर पिछड़े और दबे हुए लोगों जिनमें महिलाएं भी शामिल हैं, की मदद करनी है तो हमें उनमें ऐसी ताक़त लानी होगी कि उनका दबाया जाना और शोषण रोका जा सके। ऐसी ताक़त लाने के लिए जानकारी एक खास माध्यम है। शिक्षा, स्वास्थ्य और क़ानून संबंधी जानकारी आदि इसके कुछ ज़रूरी हथियार हैं।

जानकारी बांटने के लिए शिविर एक अच्छा साधन है। इसमें सीखने वालों का एक बड़ा समूह और सिखाने वालों की एक टीम जो कि 2 से 4-6 तक हो सकती है। यह इस पर भी निर्भर करता है कि शिविर की अवधि क्या है। सीखने वालों का समूह विषय के अनुसार छोटा व बड़ा हो सकता है। 10 से लेकर 40-50 तक लोग हो सकते हैं। समूह उतना ही बड़ा होना चाहिए जिससे कि सबको अपनी बात कहने का मौका मिल सके।

### सबकी भागीदारी ज़रूरी

जब हम जानकारी संबंधी शिविर की बात करते हैं तो हमारा मतलब यह नहीं है कि संदर्भ व्यक्ति आएं और भाषण देकर चले जाएं। इसमें ज़ोर सीखने पर होना चाहिए, सिखाने पर नहीं।

इसके लिए ज़रूरी है कि सभी की बराबर की भागीदारी हो। दोनों में एक संवाद ज़रूरी है।

शिविर में सीखने वाले यदि प्रौढ़ हैं तो उनके अपने अनुभवों से बहुत कुछ सीखा, सिखाया जा सकता है। चर्चा इस प्रकार चलनी चाहिए कि सीखने वालों के मन में जानने और समझने की ललक पैदा हो। उसके बाद उन्हें भाषण द्वारा भी समझाया जा सकता है।

भाषण के बाद फिर चर्चा ज़रूरी है। प्रश्नोत्तर के लिए भी काफ़ी समय रखना चाहिए। अधिकतर बातें उसी प्रक्रिया में साफ़ होती हैं।

### शिविर की तैयारी

स्थान—जगह का चुनाव बहुत महत्व रखता है। भाग लेने वालों के पास का स्थान होगा तो ज़्यादा लोग भाग ले सकेंगे। यदि शिविर स्त्रियों का है तो बस्ती या रास्ते से दूर जगह पर होना चाहिए। तभी वे खुलकर अपनी बात कह सकेंगीं। महिलाओं के शिविर में देखा गया है कि पुरुषों की उपस्थिति में वे उतना खुल नहीं पाती हैं।

मनः स्थिति—स्थान से भी ज़्यादा अहम है सीखने वालों की ऐसी मन की तैयारी जिससे कि वे बात सुनने को तैयार हों। इसके लिए एक खास वातावरण बनाना पड़ता है। उन्हें शिविर के

उद्देश्यों, चर्चा के विषयों, तरीकों और कार्यक्रम की पहले से जानकारी होनी चाहिए। सिखाने वाले या संदर्भ व्यक्तियों को भी पहले से सीखने वालों की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि का अंदाजा होना चाहिए। इससे वे समूह की आशाओं और अपेक्षाओं के अनुसार कार्यक्रम चला सकेंगे।

कोई भी नई चीज़ सीखने के लिए पुराना अनसीखा भी करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में सीखने वालों का अपने ऊपर विश्वास बना रहे इसका ध्यान रखना ज़रूरी है। वे असुरक्षित न महसूस करें। कार्यक्रम में उनकी रुचि बनी रहे यह भी ज़रूरी है। इसके लिए उनकी बातें, उनकी समस्याएं सुनना ज़रूरी है। चर्चा उनकी समस्याओं से जुड़ी होनी चाहिए। तभी वे सीखा हुआ उन समस्याओं को हल करने में उपयोग में ला सकेंगे।

### समूह बनाना

शिविर में ज़्यादातर लोग एक समान उद्देश्य या कुछ खास संबंधित मुद्दों को लेकर जुड़ते हैं।

शिविर का यह भी एक मकसद होता है कि वे सामूहिक रूप से कुछ सीख सकें और उनकी ताक़त से एक समूह बने और समूह से उन्हें ताक़त मिले।

### कार्यक्रम का ढांचा

कार्यक्रम किस प्रकार चलेगा इसकी एक मोटी रूपरेखा बनाई जा सकती है। लेकिन इसमें एक खुलापन और लचीलापन होना ज़रूरी है। कार्यक्रम में नई चीज़ें, नए मुद्दे भी जुड़ सकते हैं। उसके हिसाब से स्वरूप बदलने की गुंजायश ज़रूरी है।

भाषण, चर्चा, खेल, अभ्यास, नाटक, गीत आदि मिले-जुले तरीके अपनाने से रुचि बनी रहती है और सबकी भागीदारी बढ़ती है। कब, कितना समय किसको देना है यह शिविर के उद्देश्य और विषय-वस्तु पर निर्भर करेगा।

शिविर के उद्देश्य और विषय-वस्तु के आधार पर सामग्री का चयन किया जाता है। यदि भागीदार पढ़ सकते हैं तो उन्हें लिखित सामग्री देना अच्छा रहता है। पोस्टर, गाने, नाटक आदि देखने और सुनने वाली सहायक सामग्री का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

### मूल्यांकन

सीखने और सिखाने वाले दोनों का ही लगातार मूल्यांकन ज़रूरी है। हर दिन सुबह पिछले दिन का मूल्यांकन किया जाए। फिर शिविर के दौरान, मध्य और अंत में मूल्यांकन करना अच्छा रहता है।

बाद में भी एक संबंधित कार्यक्रम चलाना ज़रूरी है। सीखने वालों के पास बाद में जाकर बातचीत, छोटी सभाएं अथवा पत्र व्यवहार एवं समाचार-पत्रिका द्वारा इसे चलाया जा सकता है। शिविर का पूरा लाभ तभी होगा।

—साभार : प्रिया संस्था, नई दिल्ली

# जनशक्ति एक बार फिर

सुहास कुमार

अरक आंदोलन के बाद आंध्र प्रदेश के लोगों के गुस्से का निशाना है वैश्यावृत्ति। निज़ामाबाद से 28 कि.मी. दूर नंदीपेट गांव के 10,000 ग्रामवासी इस लड़ाई के अगुआ बने हैं। गांववालों में बड़ी संख्या में औरतें और बच्चे थे।

वैश्याओं के अड्डों पर पतियों के जाने से औरतें परेशान थीं। सारे पारिवारिक जीवन पर उसका असर पड़ रहा था। बच्चों के स्कूल वैश्याओं के अड्डों के सामने थे। एक ही दिन में उन अड्डों को पूरी तरह नष्ट कर दिया गया। एक गांववाले के शब्दों में—"हमने एक दिन में वह करके दिखा दिया जो प्रशासन 25 साल में नहीं कर सका।"

## आंदोलन क्यों?

23 नवंबर '92 को एक लड़की वैश्याओं के अड्डे से भागकर गांववालों के पास आई थी। उसने रोते-रोते बताया कि वह नालगोंडा ज़िले के यादगिरिगुडा गांव की लड़की है। उसे जबर्दस्ती भगाकर लाया गया है। उसके आंसुओं और माथे से बहते खून का गांववालों पर कोई असर नहीं हुआ। वह लड़की खेतों की ओर चली गई और फिर उसे किसी ने नहीं देखा।

लेकिन एक समाचार-पत्र ने इस घटना को सुर्खियों में छापा और लिखा कि नंदीपेट के गांववालों को कोई शर्म या लज्जा नहीं है। वे नपुंसक हैं। इसका बहुत असर हुआ।

आसपास के गांव के लोग वहां की घटना के बारे में पूछताछ करने लगे। उन लोगों को इस बात पर बहुत गुस्सा था कि लड़कियों को जबर्दस्ती भगा कर उन्हें वैश्या बनाया जा रहा है। एक लड़की जो भागकर शरण में आई उसका कोई पता निशान नहीं मिल पा रहा है। (यह बात तो बहुत बाद में पता चली कि नेगुलु बुच्चन नाम के व्यक्ति ने उसे शरण दी थी।)

24 नवंबर '92 की शाम तक यह बात वैश्या टोले तक पहुंच गई थी कि गांव में उनके खिलाफ़ काफ़ी गुस्सा है और शायद उन पर आक्रमण किया जाए। वहां रहने वाले सभी लोग जिनमें 80 वैश्याएं थीं अड्डा छोड़कर चले गए। सिर्फ कुछ बूढ़ी औरतें और बच्चे रह गए थे। अखबार पुलिस पर जोर डाल रहे थे कि अड्डे पर छापा मारना चाहिए और गायब हुई लड़की का पता लगाना चाहिए। लेकिन गांववालों को शांत करने के लिए यह काफ़ी नहीं था।

## जनता का गुस्सा

औरतों, आदमियों और बच्चों ने हज़ारों की संख्या में 25 नवंबर '92 को जुलूस निकाला। मंडल कर विभाग के दफ्तर के सामने धरना दिया और कार्यवाही की मांग की।

उसके बाद वह सीधे वैश्या टोले की ओर गए और पुलिसवालों को कहा कि आप दूर खड़े हो जाओ। यह मामला जनता, वैश्याओं तथा दलालों के बीच का है और हमें इससे निबटने दो। उन्होंने नए पक्के बने घरों के दरवाजे तोड़ डाले। झोपड़ियां जला दीं। गहने, कपड़े, फर्नीचर, यहां तक कि नोटों को भी ढेर बनाकर आग लगा दी।

पूरे समय दलालों और पुलिस के खिलाफ़ नारेबाज़ी भी चलती रही। उसके बाद सब अपने घरों को लौट गए।

गांववालों का कहना है कि वैश्याओं और दलालों के साथ पुलिस की मिलीभगत की वजह से ही अड्डे चलते रहते हैं। पुलिस वालों का कहना है कि वह अक्सर छापे मारते हैं, जुर्माना करते हैं। मगर वैश्याएं स्वयं कहती हैं कि वे पेट की खातिर ऐसा करती हैं। अतः उनको अपना काम करने दिया जाए।

नंदीपेट गांव से और लोगों को भी प्रेरणा मिली है। यादगिरिगुडा में एक लड़की लक्ष्मी को विशुवर्धन नाम के व्यक्ति ने वैश्याओं के चंगुल से छुड़ाया है। लड़की को उसके चाचा ने 1000 रु. में बेच दिया था। अब दोनों की शादी होने की बात है। □

# औरतों की आवाज़: विवेक की आवाज़

वीणा शिवपुरी

आज फिर हमारे देश में सांप्रदायिकता का ज़हर फैल रहा है। एक साथ देश के कई कोनों में दंगे भड़क उठे हैं। हज़ारों लोग मारे गए, घायल हुए। घर बरबाद हुए। औरतें-बच्चे लावारिस हो गए। लाखों रुपए की संपत्ति नष्ट हो गई। लोगों की रोज़ी-रोटी चली गई।

ऐसा लगता है कि आपस में लड़ते-मरते रहना मनुष्य का भाग्य है। इंसान जो अपने आपको इस धरती पर सबसे बुद्धिमान समझता है। चांद-तारों तक पहुंच गया है। लेकिन ज़मीन पर चैन और अमन से रहना नहीं सीख पाया। गली मुहल्लों के फ़सादों से लेकर देशों के आपसी युद्धों तक हिंसा का तांडव चल रहा है।

## हर बार वही कहानी

आज हमारे यहां मार-काट मंदिर-मस्जिद को लेकर है। हिंदू-मुसलमान दुश्मन बने हुए हैं। सन् '84 में नफरत हिंदू-सिखों के बीच थी। कारण उतना महत्वपूर्ण नहीं। क्योंकि कारण तो कुछ भी हो सकता है। जब मंदिर-मस्जिद का मसला नहीं था तब भी फ़िरकापरस्त झगड़े करवाते थे। कभी ताज़ियों के जुलूस को लेकर तो कभी किसी और बात पर। मैं यह नहीं मानती कि जब मंदिर-मस्जिद का मामला हल हो जाएगा तो शांति हो जाएगी। **जब तक स्वार्थी राजनीतिज्ञ और फ़िरकापरस्त लोग आम जनता को भड़काते रहेंगे, जब तक आम जनता उनके बहकावे में आती रहेगी, तब तक हिंसा का माहौल खत्म नहीं होगा।** मैं यह भी नहीं मानती कि अगर मुसलमान और सिख यहां नहीं रहेंगे तो झगड़ा नहीं होगा। तब हिंदू-हिंदू लड़ेंगे। वैष्णव और शैव सिर फ़ोड़ेंगे। दलितों और उच्च जाति में झगड़ा होगा। जो देश धर्म के आधार पर सरकारें चलाते हैं वहां भी दंगे होते हैं।

## बांटो और राज करो

लोगों को बांट कर अपना फ़ायदा करने की नीति न जाने कितनी पुरानी है। बांटने का आधार कुछ भी हो सकता है। चाहे वह धर्म हो, संप्रदाय हो, जाति, भाषा, नस्ल कुछ भी हो। ऐसे लोग

बहुत थोड़े होते हैं लेकिन बहुत अधिक लोगों को मूर्ख बनाने में सफल होते हैं।

जब गली मुहल्लों में जाकर बात करो तो सब कहते हैं हमें अपने पड़ौसी से कोई डर नहीं। जब ग़रीब तबके से पूछो तो कहते हैं हमें अपनी रोज़ी रोटी की फ़िक्र है। फिर कौन है ये लाखों लोग जो अपना घर-बार, काम-धाम छोड़ कर अयोध्या जा पहुंचे? किसी अच्छे काम के लिए लोगों को फुरसत नहीं मिलती लेकिन यहां लोग दूर-दूर से चल कर पहुंचे मस्जिद को तहस-नहस करने के लिए। ये लोग भी तो हमारे आपके जैसे हैं। किसी गली मुहल्ले से आए हैं। किसी के पड़ौसी, हमदर्द और दोस्त हैं। फिर कौन सी ताक़त है जो इन्हें इंसानों से हैवान बना देती है। इनसे सोचने व समझने की ताक़त छीन लेती है। ये अपना भला-बुरा भूल कर बार-बार उसी षड्यंत्र के जाल में फंस जाते हैं।

हर साल या दो साल में सारे देश में किसी न किसी मुद्दे को लेकर नफ़रत और हिंसा की लहर दौड़ जाती है। हज़ारों प्राणों, घरों और संपत्ति की बलि लेकर आग कुछ ठंडी पड़ती है। फिर कुछ समय बाद किसी और बात को लेकर वही तूफ़ान उठ खड़ा होता है। आखिर कब तक?

कब तक इंसान इसी तरह एक दूसरे के खून का प्यासा रहेगा? कब तक कुछ लोग अपने स्वार्थ के लिए लोगों की जानों से खेलते रहेंगे?

## सांप्रदायिकता की चक्की में पिसी औरतें

आज गली-मुहल्लों की नेतागिरी से लेकर देशों की सरकारें तक मर्दों के हाथों में हैं। भले-बुरे की निर्णयशक्ति भी उन्हीं के हाथों में है। दुनिया को बारूद के ढेर पर ला बैठाने की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं की है। लेकिन हिंसा की इस अंधी दौड़ का नतीजा औरतों को भी भुगतना पड़ता है। लूटपाट, आगज़नी और हत्या में उनके घर खत्म हो जाते हैं। बरसों की मेहनत से बनाई-बसाई गृहस्थी मिनटों में खाक हो जाती है। मर्दों की बदले की आग में दोनों संम्प्रदायों की औरतों की इज्ज़त जलती है।

यह तूफ़ान गुज़र जाने के बाद टूटे-फूटे घरों को फिर से बसाने का बोझ भी औरतों के कंधों पर ही पड़ता है। ज़िंदा बचे हुए बूढ़ों और बच्चों का पेट पालने की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं की होती है। आज ज़रूरत है कि औरतें एकजुट हो कर अपने गांव, गली-मुहल्लों से लेकर दिल्ली की संसद तक शांति और अमन की मांग करें। अपनी आवाज़ में आधी आबादी की ताक़त पैदा करें। भाईचारे की बात करने वाले और लोगों को भी नेतृत्व दें।

**हमारी जाति है इंसान**
**हमारा धर्म है इंसानियत**
**यही है औरतों की आवाज़**
**यही है विवेक की आवाज़** □

## गीत

एक अभियान चलाना है
युवती-संगठन बनाना है
हर दीवार को तोड़ गिराना है
मिल-जुल कर रहना है
सब बहनों को समझाना है
नारी एकता को बढ़ाना है
गांव-गांव में संदेश पहुंचाना है
संस्था को आगे बढ़ाना है

**राजेश्वरी शर्मा** ग्राम वरछवाड़ (हि.प्र.)

# कुछ यहां की: कुछ वहां की

सांसद वीणा वर्मा की कुसुम बाला से बातचीत का एक अंश—

एक अनुभवी और जागरूक महिला सांसद होने के नाते आप भावी महिला पीढ़ी को क्या संदेश देना चाहेंगी?

वीणा वर्मा—महिलाओं को? मैं तो पुरुषों को संदेश देना चाहूंगी। आप महिला होकर महिलाओं को संदेश देने की बात करती हैं। मैं खनखनाकर कहना चाहती हूं पूरे समाज से, पुरुषों से कि सिर्फ़ महिलाओं को ही नहीं जगाना है, पुरुषों को भी जगाना है। हमारे संस्कार अजीब हैं। जहां कोड़े खाने वाले को कहा जाता है कि तुम कोड़े क्यों खा रहे हो? पर मारने वाले को कभी नहीं कहा जाता कि तुम कोड़े मत मारो। अपने अधिकार के प्रति हमें खुद ही जागरूक होना पड़ेगा।

'राष्ट्रीय सहारा' समाचार पत्र

## जनसंख्या पर अनोखा नियंत्रण

क्यूबा एक विकासशील देश है। 1959 में यानि भारत को आज़ादी मिलने के 12 वर्ष बाद वह एक आज़ाद देश बना। उस वक्त वहां मोटे तौर पर जन्मदर प्रति हज़ार पीछे 35 थी। आज यह 17 है। सन 1965 और 1980 के बीच वहां की जन्मदर आधी हो गई है। आर्थिक और सामाजिक सुधार भी हुआ है। इससे मृत्यु दर कम हुई है। औसत आयु बढ़ी है।

लिंग भेद यहां भी अभी काफ़ी है। लेकिन दुनिया के बहुत से देशों से कम है। स्त्रियों की स्थिति अच्छी है। **उनके पारिवारिक संहिता क़ानून में कहा गया है कि घरेलू कामों में पुरुषों की बराबर की हिस्सेदारी होनी चाहिए। क्यूबा एक मिसाल है कि स्त्रियों को बराबरी का दर्जा मिले तो परिवार नियोजन पर उसका सीधा असर पड़ता है।**

दक्षिणी कोरियाई देशों में भी जनसंख्या की बढ़ोतरी में बहुत कमी आई है। यह परिवार नियोजन अभियान से नहीं हुआ है। यह बदलाव औरतों की शिक्षा और रोज़गार के मौकों की वज़ह से आया है। इससे शादी की उम्र बढ़ी है। आर्थिक स्तर ऊंचा हुआ है। आम व्यक्ति की आय बढ़ी है।

जंजीरें को तोड़कर, किशोर भारती

## संपूर्ण महिला पंचायत

पूना (महाराष्ट्र) ज़िले के ब्रह्मनगर गांव में ग्राम पंचायत की सातों सदस्य महिलाएं चुनी गई हैं। यह गांववालों ने चर्चा करके मिल कर फैसला किया था। उनकी सोच है कि महिलाओं के चुनने से राजनीतिक नेताओं पर भी शायद कुछ गांव संबंधी सुधार आदि पर असर पड़ेगा। वे सब उनके रुख से परेशान हैं क्योंकि चुनाव के पहले ही उनकी सूरतें दिखती हैं। सुधार संबंधी वादे कभी भी पूरे नहीं किए जाते।

गांव के एक बड़े-बूढ़े ने इसका एक और कारण दिया। पुरुष आपस में लड़ते हैं। पार्टीबाज़ी चलती है। इसलिए हम लोगों ने सोचा कि युवती महिलाओं को क्यों न मौका दिया जाए। रपटों के अनुसार महिला पंचों ने गांव में सबसे पहले एक स्वास्थ्य केंद्र की स्थापना का मुद्दा ज़ोर-शोर से लिया है।

'पायनियर' समाचार पत्र

# सबला के लेखों पर कुछ प्रतिक्रियाएं

अनिता ठैनुआं

*लेख—'हमारी बेड़ियां' अंधविश्वास, झाड़फूंक के खिलाफ़ है। कोदारीबाई नाम की एक महिला बच्चे की आशा से भोपे के पास गई और उसने उसके पेट पर नीबू रखकर तलवार से काटा। नीबू एक तरफ गिरा और तलवार पेट में धंसने से कोदारीबाई की जान गई।*

गांव की महिलाएं अभी भी टोने टोटके, झाड़-फूंक में विश्वास करती हैं। बड़ी बूढ़ी महिलाएं अभी भी इसी इलाज में विश्वास करती हैं। हां कम उम्र की पढ़ी-लिखी लड़कियां अब डाक्टर के पास ही जाती हैं।

*लेख—'सुनोगी मेरी कहानी' तेलंगाना आंदोलन की भागीदार की सच्ची कहानी है। एक दासी ज़मींदार घरानों में काम करती थी। कैसे उसने पार्टी से सहयोग लिया और दासप्रथा से छुटकारा पाया।*

यहां गांव की औरतें इसे बिलकुल अपने जीवन से जोड़ नहीं पाईं और कहा कि यहां कोई दासप्रथा नहीं है। हम किसी से दबकर नहीं रहतीं। यहां सभी स्वतंत्र हैं। हां, यह ज़रूर है कि औरतों को कम मज़दूरी मिलती है और उनका शोषण किया जाता है। संगठन की कमी ज़रूर लगती है और इसीलिए हम विरोध नहीं कर पाती हैं। एक दिन भी मजूरी न करें तो भूखी मर जाएं।

औरतों को यह भी लगता है कि कुदरत ने उन्हें कमज़ोर बनाया है। सदियों से मर्द की छाया

में जीने की वज़ह से हमें अपने ऊपर भरोसा नहीं है। हमें घर व ससुराल में चाभी की गुड़िया की तरह घुमाते हैं।

*लेख—'किताब छूने पर अब तो नहीं डांटोंगी' में मां अपने रिश्तेदारों के दबाव में आकर लड़की की शादी जल्दी कर देना चाहती है। लड़की की इच्छा खूब पढ़ने-लिखने की होती है। सहारा पाकर वह ऐसा करती भी है। दफ्तर में अच्छी नौकरी पा जाती है।*

गांव की महिलाओं को पता नहीं था कि छोटी उम्र में लड़की की शादी करना क़ानूनन जुर्म है। वहां तो कम उम्र की शादी आम बात है। यह बताने पर कि कम उम्र में मां बनने से स्वास्थ्य

पर बुरा असर पड़ता है, एक महिला बोली—"खुद भुगता है। मगर पति के सामने हमारी एक नहीं चलती क्योंकि वह घर का मुखिया है।"

*लेख—'औरतों के खिलाफ़ पारिवारिक हिंसा'।*

महिलाओं ने माना कि आजकल यह बहुत बढ़ गया है। हम कहीं भी सुरक्षित नहीं हैं। उन्होंने यह भी कहा कि हम तो इस तरफ ध्यान भी नहीं देती हैं कि हमारे साथ कुछ गलत हो रहा है। लेख को सुनने के बाद लगता है कि लड़की का जीवन बेकार है। अगर कोई बाहर का आदमी हमारे साथ बलात्कार करता है तो हम लांछन भी लगा सकते हैं। घर का कोई करे तो हम बोल भी नहीं सकते। उल्टे हमें ही दोषी ठहरा दिया जाता है।

*'जुर्म बलात्कार का' लेख में दिया गया है कि किन हालात में यौन संबंध बलात्कार माना जाएगा। अगर आप के साथ बलात्कार हुआ है तो क्या करें।*

महिलाओं का कहना था कि हमें नहीं मालूम कि यह क़ानूनन जुर्म है और इसकी सज़ा क्या होती है। उन्होंने कहा हम तो यह कहके छोड़ देते हैं कि भगवान इसे देखेगा। अगर किसी के पास पैसे या लट्ठ का ज़ोर है तो वह बदला ले सकता है। लेकिन गरीब की सुनवाई कहीं नहीं होती।

*'नारप्लांट के खिलाफ़' लेख में एक नए गर्भ-निरोधक के बारे में बताया गया है। पांच साल के लिए औरत की बांह में आपरेशन करके कुछ नलियों को लगा दिया जाता है। धीरे-धीरे दवाई रिस-रिस कर शरीर में जाती है और बच्चे नहीं होते। मगर इसके बहुत से नुकसान भी बताए गए हैं।*

औरतों को गर्भ-निरोधकों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। उनका यह भी कहना था कि हम औरतों को ही क्यों पीसा जाता है। आदमी आराम से घूमते फिरते हैं। उनका कहना था कि नसबंदी ही सबसे ठीक तरीका है। उन्होंने यह भी कहा कि कम उम्र में लड़की मां बन जाए तो कोई भी नुकसान नहीं होता। एक ने कहा—"हमारी 12 साल में शादी हुई थी। 12 बच्चे हुए। उनमें से 6 मर गए, 6 जिंदा हैं। मैं ठीक-ठाक हूं।"

*लेख 'ग्राम पंचायत में महिलाओं की भूमिका' में दिया गया है कि पंचायत में महिलाएं आ रही हैं। उनके हाथ कैसे ज़्यादा मज़बूत किए जा सकते हैं। उन्हें अपनी ताक़त समझनी होगी और साथ ही भारी ज़िम्मेदारी भी।*

गांव में अधिकतर महिला पंच का चुनाव नहीं होता। बूढ़ी, अनपढ़ महिलाएं पंच मनोनीत कर दी जाती हैं। उन्हें मीटिंगों में शामिल नहीं किया जाता। पहले तो पंचायत के चबूतरे या पंचायत घर पर औरतें चढ़ती ही नहीं थीं, मगर अब कहीं-कहीं चढ़ने लगी हैं।

पूछने पर कि वह किसे वोट देंगी, उन्होंने कहा—"हमारे घर के आदमी ही हमें बता देते हैं कि किसे वोट देना है।" पूछने पर कि उन्हें अगर चुनाव में खड़ा किया जाए तो क्या वह तैयार होंगी, उन्होंने (जाटव महिलाओं) कहा—"हमें कौन खड़ा होने देगा। ब्राह्मण या जाटों की महिलाएं चुन ली जाएंगी। हम छोटी जात वालों को अपनी जात वालों के अलावा कोई वोट नहीं देगा।"

उनका यह भी कहना था कि सरकार को यह नियम बनाना चाहिए कि पढ़ी-लिखी व युवा महिला ही पंच बन सकती है। □

# पाठकों की कलम से

नारी मुक्ति आंदोलन तभी सफल हो सकता है जब पुरुषों की इसमें पूर्ण भागीदारी हो। यदि उनकी सोच में परिवर्तन आता है तो स्त्रियों को उनके अधिकार अपने आप मिल जाएंगे। जिस समाज में निर्णय लेने का अधिकार सिर्फ पुरुष का ही हो तो स्त्री अच्छे विचार रखकर भी क्या कर सकती है? यदि यह नियम बन जाए कि अंतिम संस्कार स्त्रियां भी कर सकती हैं तो समाज में अपने आप एक क्रांतिकारी परिवर्तन आ जाएगा। अच्छा है कि आपने 'सबला' के माध्यम से पुरुष पाठकों के नाम स्तंभ शुरू किया है।

**मंजू देवी**
वाराणसी (उ.प्र.)

'सबला' पत्रिका नारी जीवन को सफल, सुदृढ़ और सुखी बनाने की राह दिखाती है। यह अंधेरे में जलने वाले दिए के समान है। इस पत्रिका से मिले योगदान की मैं बहुत आभारी हूं। हमारे ललियाही मुहल्ले में इस पत्रिका की बहुत प्रशंसा की जाती है।

**रचना भारती**
कोढ़ा सह-कटिहार, बिहार

जब हम नारी की कठिनाइयों की बात करते हैं तो हमें महसूस होता है कि नारी ही नारी की उन्नति में बाधक है। दहेज के नाम पर ताने, दहेज-हत्या, नौकरी करने में बाधक ताने, शिकवे-गिले यह सब सास-ननद ही करती दिखती हैं। एक नारी दूसरी नारी को सम्मान दे, उसकी भावनाओं की कद्र करे तभी तो समाज को बदला जा सकता है।

हर नारी का हो यह कहना
नारी घर की शान है,
समाज की आन है।

**विद्या सोनी**
जावरा (म.प्र.)

'सबला' के बारे में एक बात कहूं तो काफी है कि इसे अपने से अलग कभी समझा ही नहीं। इसके सर्वव्यापी दृष्टिकोण के कारण मेरे आसपास के समूह में भी इसकी काफ़ी सराहना हुई है। आज जब नारी मुक्ति आंदोलन के बारे में यह भ्रम फैलाए जाते हैं कि यह पुरुषों से मुक्ति है तो इसके द्वारा पेश सफ़ाई बहुत सार्थक है। अपने नाम की सार्थकता के साथ आकर्षित करने की क्षमता भी है। कई बार हम इसके लेखों पर समूह के साथ चर्चा करते हैं।

कई महिलाओं को राह ढूंढने में इससे सहायता भी मिली है। भाषा के सहज शब्द चित्रों के माध्यम से इसे समझना आसान होता है। कई महिलाएं जो पढ़ नहीं पातीं चित्रों के माध्यम से काफ़ी कुछ समझ जाती हैं। चित्रों को कुछ और सरल तथा संख्या में अधिक कर दें तो अच्छा है।

**किरण**
स्त्री मुक्ति संघर्ष वाहिनी, पटना

मैं एक वर्ष से ही इसकी पाठिका हूं। आपने जो विषय, समस्याएं ली हैं सचमुच स्तुत्य हैं। इसमें महिला की समस्याओं को हल करने के लिए पुरुषों के सहयोग की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता। चित्रों, कहानियों एवं कविताओं द्वारा पत्रिका मनोरजंक एवं ज्ञानवर्धक बनाई गई हैं।

**सुमन प्रधान**
महिला दक्षता समिति, नई दिल्ली

महिलाओं के लिए यह एक अत्यंत ही उपयोगी पत्रिका है जिसकी मैं अपने शब्दों द्वारा सराहना नहीं कर सकती। आपकी पत्रिका से प्रेरित होकर मैंने लगभग 100 ऐसी महिलाओं का संगठन बनाया है जिनको या तो उनके पति ने परित्याग कर दिया है या दहेज कम मिलने के कारण तिरस्कृत कर दिया गया है। या वे परिवार में कई सदस्य होने के कारण असहाय हैं। कई के पति नशे के आदी हैं। सभी महिलाएं असहाय हैं। वैसे ये महिलाएं जीवन से निराश हो चुकी थीं। आपकी पत्रिका ने सभी के उदासीन हृदयों में एक आशा की किरण जागृत कर दी है।

**रानीसिंह**
**जजमऊ, कानपूर (उ.प्र.)**

# प्रेरकों की पाती

मैं चल पुस्तकों के साथ 'सबला' भी जहां-जहां जाता हूं ले जाता हूं। औरतों के साथ पुरुषों ने भी पत्रिका को पढ़ा। ज़्यादातर मुझे खुद पढ़कर सुनाना पड़ता है। सभी को बाल-विवाह मिटाएं लेख व अधिनियम अच्छे लगे। जो पढ़े वो बढ़े कहानी भी श्रेष्ठ लगी। केंद्र पर जो शिक्षित महिला हैं वह और औरतों को सुनाती हैं। यह पत्रिका महिलाओं के लिए प्रगति का मार्ग बनकर हौसला बुलंद करने वाली है।

**रमाशंकर त्रिवेदी**
**ग्राम कराई, उदयपुर, राज.**

## पुरुष पाठकों से संवाद

पति स्त्री के लिए भगवान लेकिन स्त्री पति के पैर की जूती—ये बेमेल मान्यता कैसी? पुरुषों को भी स्त्रियों के समान ही शिष्टाचार और शालीनताओं की मर्यादा का पालन करना है।

आज स्त्रियों की भीरुता उनका गुण न बनकर दूषण बन गया है। जब तक स्त्रियों में दुष्टों से, गुंडों से सामना करने की क्षमता नहीं आ जाती, उनका जीवन सुरक्षित और स्वतंत्र नहीं रह सकता।

पुरुष ने नारी को दबाया है, उसका विकास नहीं होने दिया। उनकी आर्थिक परतंत्रता भी उसके पद-दलित होने का खास कारण है। विधवा एवं परित्यक्ता महिलाओं के पुनर्वास की व्यवस्था तो दूर, उनके रोज़गार के लिए निश्चित आरक्षण तथा समुचित पालन तो होना चाहिए। क्या हम सरकार से कल्याणकारी व्यवस्था की स्थापना की आशा करें?

स्त्री का शरीर कांच के बर्तन जैसा—एक बार शील भंग हुआ तो इज्ज़त गई। क्या स्त्री की प्रतिष्ठा, उसकी इज्ज़त केवल उसके शरीर तक सीमित है?

मैं पुरुष नाम के प्राणी से पूछना चाहूंगा कि स्त्री क्या एक पशु है जिसे इच्छा होने पर रख लिया और इच्छा भरने पर दुत्कार दिया। उसे खिलौना समझ कर फेंक दिया। यह मानवता का घोर अपमान है।

पुरुष ने अपने स्वार्थ के लिए नारी को अबला बना के रख छोड़ा है। यह पुरुष की मनोवैज्ञानिक विजय है। समय आ गया है पुरुष को इकझोरने का। आप सबला हैं! सबला!!

**श्री एम.एल. भटनागर**
**सूरजपोल, कोटा, राज.**

**पुरुषों के प्रगतिशील विचारों का सबला में तहेदिल से स्वागत है।**

**सबला सहयोग मंडल**

आंखों से अक्षर पहचानो
साक्षरता से जग को जानो

साक्षरता से मिलता यह ज्ञान
सब मानव हैं एक समान